विश्व हिन्दी दर्शन

जनवरी-मार्च, 1980

त्रैमासिक

विश्व हिन्दी दर्शन

हिन्दी की सर्वप्रथम विश्व पत्रिका

वर्ष 2, अंक 1
जनवरी-मार्च, 1980

संपादक
लल्लनप्रसाद व्यास

प्रकाशक
लल्लनप्रसाद व्यास
विश्व हिन्दी प्रतिष्ठान के सहयोग से
सी-13, प्रेस एन्क्लेव, साकेत, नयी दिल्ली-110017
फोन : 669776

मूल्य : 4 रुपये

मुद्रक
रूपक प्रिंटर्स, के-17, नवीन शाहदरा
दिल्ली-110032

VISHWA HINDI DARSHAN
JANUARY-MARCH 1980

क्रम

भारत अपने पुत्र का सम्मान करता है / **योजेफ चोली दरोजी** 4
हंगरी में हिन्दी / **डॉ० एवा अरदी** 5
गयाना से भोजपुरी यानी हिन्दी / **सुरेन्द्र गम्भीर** 8
नेपाल में हिन्दी अनुसन्धान का क्षेत्र / **डॉ० कृष्णचन्द्र मिश्र** 13
हिन्दी राष्ट्रभाषा क्यों / **डॉ० आरिगपूडि** 21
श्रद्धा ही जीवन का आधार बने / **घनश्यामदास बिड़ला** 26
हिन्दी साहित्य के तीन सितारे / **अक्षयकुमार जैन** 32
आधुनिक हिन्दी साहित्य में बौद्ध दर्शन / **डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे** 37
बहार का दिल / **मंजूरुल अमीन** 43
चम्पक का बगीचा / **शाण्डिलयन्** 52
पुस्तक-समीक्षा 62

(म० लकतोश[1] के लिए)

भारत अपने पुत्र का सम्मान करता है

योजेफ चोली दरोजी

□□

उसके मुँह पर डर और विनम्रता नहीं हैं,
सिर्फ प्रतिष्ठा है; भारत अपने पुत्र का सम्मान करता है।
बूढ़ा जिप्सी अब सीधा है,
जैसे जंगल में बढ़ते हुए पेड़,
जैसे एक राजा अपने चिथड़ों से छाई हुई शायिका पर;
उसकी ठंडी हुई आँखों के सुन्न तारे
शताब्दियों में जमे हुए अम्बर हैं।
उसके लिए देवदारों का शोक-संगीत सरसराता है,
उसके सिर के पास प्रधान पुरोहित : बौद्ध खड़ा रहता है।
यहाँ पुरानी भूमि है, जो अपने पुत्र के चुंबन
सुनती है और जो आम के पेड़ के ऊपरवाले
चाँद की नसों पार सूचना देती है; एवं बड़ा चक्र
अपने परिचित स्थानों में आराम करता है।
हजार वर्षों की गहराई से काली देवी आती है—
उसका प्रकाश तिलमिलाता है, प्रकाश का पीला रंग
ज्यादा से ज्यादा तपाता है, आँखों को, दिमाग को और खेत को
वह चोट लगाता है, क्योंकि अमर चिता में
गरमी जलती है, उसकी ज्वालाएँ
माँस भेदती हैं, हर मध्याह्निक रेखों में पवित्र
अग्नियाँ हैं--जब तक सब उदासीनताएँ धीरे
भस्म हो जाती हैं,—सिर्फ विजय बढ़ती है
और दया··· □

अनुवाद : **डॉ० एवा अरदी**

1. म० लकतोश एक प्रसिद्ध हंगेरियन जिप्सी उपन्यास लेखक है। उसका प्रमुख उपन्यास : 'काले मुख' जिप्सी लोगों की हालत पर और उनके भारतीय मूल पर 1972 में लिखा गया है। वह भारत को बहुत प्यार करता है और 1976 में भारत आया था।

हंगरी में हिन्दी

डॉ० एवा अरदी

□□

भारत के नाम से ही हम हंगरीवासी एक विचित्र जादू महसूस करते हैं। पुराने समय से यह देश हम लोगों के लिए एक कथालोक जैसा रहा है। इसीलिए हंगरी में भारत के बारे में लिखी हुई किताबें, यात्रा-डायरी आदि बहुत लोकप्रिय हैं। इस सिलसिले में कुछ पुराने हंगेरियन विद्वानों ने महत्त्वपूर्ण काम किया है।

इनमें सबसे प्रसिद्ध विद्वान थे अलेक्संदेर चोमा दे कोरोश। उनका जन्म 1784 में पूर्व हंगरी में हुआ था। वे एक पुरानी 'सेकय' जाति के थे। सेकय जाति का इतिहास बहुत दिल-चस्प है। यह कुल ईसा के बाद चौथी शताब्दी में हूण जाति के साथ हंगरी के क्षेत्र में बसा हुआ था। हूण और सेकय जातियां भी मगयार नायक हंगेरियन कुल की थीं। हमारा क्षेत्र इन लोगों के सबसे बड़े महाराज अत्तिला के साम्राज्य का केन्द्र था। अत्तिला सन् 453 में मर गया। तब सेकय लोग हंगेरी के पूर्व भाग की ज्यादा संरक्षित घाटी में बसे हुए थे। इस क्षेत्र का लैटिन नाम ट्रंसिलवानिया है अर्थात् 'जंगल के पार'।

सेकय लोगों की निरंतर इच्छा बहुत दिनों से यह थी कि वे मगयार जाति के स्रोत का पता लगायें जो एशिया में कहीं हो सकता है, भारत में हो। इसीलिए एक गरीब और अत्यन्त साधारण सेकय युवक अलेक्संदेर चोमा 1819 में भारत की ओर रवाना हुआ। वह अधिकतर पैदल चलता था और अनेक कष्टों के बाद 1822 में भारतवर्ष में लाहौर पहुंचा। उस समय उसकी सारी धनराशि समाप्त हो चुकी थी पर भाग्य से वह एक अंग्रेज यात्री राबर्ट मूरक्राफ्ट से मिला जिसने उसकी सहायता की और उसे अंग्रेजी-तिब्बत शब्दकोश लिखने का परामर्श दिया।

इसके बाद अलेक्संदेर चोमा ने अपने प्रथम चार साल लद्दाख के एक बौद्ध मठ में बिताये और शब्दकोश एवं तिब्बती व्याकरण लिखने का काम समाप्त किया। यह संसार में प्रथम अंग्रेजी-तिब्बती शब्दकोश था।

परन्तु अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए यानी अपने देश की जाति का स्रोत जानने के लिए वह पूरे भारत में घूमा। वह तेरह भाषाएं जानता था। भारतीय भाषाओं में से उसने संस्कृत, हिन्दुस्तानी, बंगला, मराठी और पंजाबी अच्छी तरह से सीखीं। घूमने के बाद वह कलकत्ता में बस गया। वहां वह 'एशियाटिक सोसाइटी' का सदस्य बन गया और उसने अनेक भाषा-शास्त्रीय संदर्भ तैयार किये, जो उसके इस सिद्धान्त से सम्बन्धित थे कि यूरोपीय भाषाओं में से हंगेरियन भाषा संस्कृत के सबसे निकट है। यह सिद्धान्त यद्यपि पूरी तरह खरा नहीं उतर सका, तथापि यह तथ्य बहुत से हंगेरियन भाषाशास्त्रियों का ध्यान अपनी ओर खींच चुका है।

अलेक्संदेर चोमा की मृत्यु 1842 में दार्जिलिंग में हो गयी, जबकि वह प्राचीन बौद्ध लिपियों को देखने के लिए ल्हासा की ओर जा रहा था। उसने हंगेरियन पूर्व भूमि की

तलाश में अपना जीवन दिया और उसने विश्व के सब लोगों का तिब्बती भाषा से व बौद्धधर्म के इतिहास से परिचित किया। वह दार्जिलिंग में दफनाया गया और भारत सरकार ने उसकी कब्र की हिफाजत की है, जिसके लिए हम लोग भारत सरकार के आभारी हैं।

पिछली शताब्दी में प्रोफेसर कारोय फिओक, डाक्टर योजेफ शिमद्त और डाक्टर सर औरेल श्टैय्न ने भारत-विद्या एवं संस्कृत में शोध कार्य किया। सर श्टैय्न भारत आया और अलेक्संदेर चोमा के कार्य को पूरा करना चाहता था, पर इस समय भाषाविज्ञान का बहुत विकास हो गया था, तथा सर श्टैय्न ने पाया कि चोमा का विचार सिद्ध नहीं किया जा सकता। वास्तव में हंगेरियन का मूल-स्थान कहीं उत्तर-मध्य एशिया में था, जैसा कि आधुनिक विज्ञान कहता है। लेकिन सर श्टैय्न ने इतिहास, पुरातत्त्व और दूसरे क्षेत्रों के लिए बड़ी सेवा की। उसके आविष्कार उसकी महान किताब 'सैर इन्दिया' में लिखे हुए हैं। यह किताब भारत में पहली बार प्रकाशित हुई।

हंगेरियन विद्वान भारतीय सभ्यता एवं दर्शन से प्रभावित थे। इस शताब्दी में एक प्रसिद्ध विद्वान डॉ० एर्विन बक्तई भारत आया और उसने पुरातत्त्वशास्त्र, धर्म तथा भारतीय कला के इतिहास का अध्ययन किया। उसने एक प्रसिद्ध पुस्तक भारतीय कला पर लिखी।

उसने धर्म व पौराणिक विषयों पर भी लिखा। उसे संस्कृत आती थी तथा उसने वेद, पुराणों एवं उपनिषदों से पंक्तियां उद्धृत की हैं। उसने महाभारत, रामायण, गीता तथा भारनीय कथाओं का हंगेरियन भाषा में अनुवाद किया।

एक दूसरे प्रसिद्ध हंगेरियन प्रोफेसर ज़ुला गेर्मानुस शान्ति-निकेतन में अध्यापन कार्य करते थे। वह रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अच्छे मित्र थे। कोई तीस-चालीस साल पहले हमारे विद्वानों ने मुद्राराक्षस, वैताल पच्चीसी, हितोपदेश और पंचतंत्र एवं महाकवि कालिदास की शकुन्तला, मेघदूत आदि का अनुवाद किया। साधारण हंगेरियन लोग भारतीय साहित्य में बहुत दिलचस्पी लेते हैं और आधुनिक कवियों-लेखकों की कृतियों के अनुवाद पढ़नाचाहते हैं।

हमारे पास अब तक रवीन्द्रनाथ ठाकुर की अनेक कृतियों का अनुवाद है जो कि मूल बंगला से नहीं बल्कि अंग्रेजी से किये गये हैं। हमारे पास प्रेमचन्द के 'गोदान' तथा मोहन राकेश का 'अंधेरे बंद कमरे में' शीर्षक उपन्यास और कृशन चन्दर की कुछ कहानियों के अनुवाद हैं। लेकिन हम जानते हैं कि हिन्दी साहित्य बहुत समृद्ध है, विश्वास है कि हंगेरियन लोग बड़े ही चाव से इसे पढ़ना चाहेंगे। मैं चार साल पहले भारत से वापस आयी और तुरन्त काम शुरू किया। मैंने धर्मवीर भारती, कमलेश्वर, जैनेंद्र कुमार, राजेन्द्र यादव, गुलाबदास ब्रोकर, मन्नू भंडारी और जाकिर हुसैन की कहानियों, दिनकर की 'उर्वशी' से कुछ भाग, कबीर, तुलसीदास-मैथिलीशरण गुप्त, बच्चन, भारती और वीरेन्द्र मिश्र की कुछ कविताओं का अनुवाद किया। उनमें से लगभग 15 कहानियां अब तक अलग-अलग हंगेरियन मासिक पत्रिकाओं में और हंगेरियन रेडियो में प्रकाशित-प्रसारित हैं।

इसके सिवा मैंने पिछले साल प्रेमचंद्र की 12 कहानियों और उपन्यास 'निर्मला' का अनुवाद किया, ये एक ही ग्रन्थावली में इस वर्ष प्रेमचंद्र शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित होंगे।

अब जहां तक हिन्दी के अध्ययन का सम्बन्ध है अभी तक यह हमारे यहां केवल एक विश्वविद्यालय में संस्कृत के साथ पढ़ायी जाती है। वहां से दो साल में एक-दो विद्यार्थी आ जाते हैं। यह संख्या बहुत कम है। बात यह है कि हंगरी में हिन्दी पढ़ने की मांग काफी है पर छात्र पढ़ाई के बाद कोई काम नहीं पा सकते; इसीलिए हिन्दी पढ़ाने के ज्यादा अवसर नहीं मिल पाते। हमारी इस समस्या में सिर्फ एक मदद हो सकती है यदि हिन्दी भारत में सबसे पहले पूरी

तरह स्वीकार कर ली जाय। यदि सब दूतावासों और वाणिज्य कार्यालयों में अंग्रेजी के बजाय हिन्दी अनिवार्य हो तो हिन्दी के लिए अधिक अवसर मिले और हम लोग जो हिन्दी पढ़ाते हैं वे भी ज्यादा व्यस्त हों। पर इन हालात में भी हम चार-पांच हिन्दीप्रेमी उत्साह से काम करते हैं। पहला कार्य हिन्दी को आगे बढ़ाना है।

इसके संबंध में 1964 में डॉ० आरपाड डेब्रेत्सेनि ने हिन्दी व्याकरण को हंगेरियन भाषा में लिखा। 1975 में हमारे यहां पहला हंगेरियन-हिन्दी शब्दकोश प्रकाशित हुआ, जो हमारे भूतपूर्व भारतीय राजदूत डॉ० पेटैर कोश ने दिल्ली विश्वविद्यालय के दो अध्यापकों की सहायता से पूरा किया। अभी तो डॉ० डेब्रेत्सेनि हिन्दी-हंगेरियन शब्दकोश पर केन्द्रीय हिन्दी संस्थान के साथ काम करते हैं। अगले साल में यह शब्दकोश शायद प्रकाशित होगा।

सांस्कृतिक और वैज्ञानिक संबंध हमारे देशों के बीच निरंतर विकसित होते हैं और इसलिए एक हंगेरियन-हिन्दी बातचीत पुस्तक का प्रकाशन भी आवश्यक है। इसलिए हमने 1979 अप्रैल में हंगेरियन बातचीत पुस्तक—हिन्दी भाषा में—बनायी। इसकी पांडुलिपि केंद्रीय हिन्दी संस्थान के पास है। आशा है कि 1980 में यह पुस्तक प्रकाशित होगी।

मैं इस पुस्तक की लेखिका हूं, अतएव इसके बारे में कुछ कहना चाहती हूं। पुस्तक के संपादक प्राध्यापक शांदोर रोट हैं जो बुडापेस्ट विश्वविद्यालय में अंग्रेजी ज्ञानपीठ के प्राध्यापक हैं और बड़े भाषाविद् हैं। वे 21 भाषाएं जानते हैं, इनमें से—संस्कृत, हिन्दी और बंगला भी हैं। वे 300 से अधिक वैज्ञानिक लेख और किताबें लिख चुके हैं।

हम अपनी कृति से तो हंगरी में आनेवाले भारतीयों की मदद करना चाहते हैं जो न केवल हमारे देश के सुन्दर स्थान देखने आते हैं बल्कि भाषा की सहायता से देश के लोगों के साथ भी प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करने की इच्छा रखते हैं। पुस्तक के अध्यायों में भिन्न विषय होते हैं, उदाहरण के लिए : 'हवाई अडडे पर', 'नागरिक यातायात', 'होटल में', 'समय', 'मौसम', 'भोजन', 'हंगेरियन रहन-सहन', 'परिवार', और 'सांस्कृतिक जीवन'।

हम हंगेरियन वर्णमाला के अक्षर भी दिखाते हैं और उनके उच्चारण हिन्दी शब्दों में बताते हैं। उदाहरण के लिए हंगेरियन भाषा में—हिन्दी की तरह—दोनों '**अ**' और '**आ**' ध्वनियां होती हैं। हमने बताया कि हंगेरियन a = अ, जैसे हिन्दी शब्द में : '**अमर**', इसी तरह á = **आ**, जैसे हिन्दी शब्द में : '**आम**'। क्योंकि प्रायः सब हंगेरियन ध्वनियां हिन्दी में होती हैं, इसलिए पुस्तक में हंगेरियन मूलपाठ की प्रतिलिपि देवनागरी अक्षरों में है। इससे हम जोर देना चाहते थे कि हमारी दोनों भाषाओं के बीच तीसरी मध्यस्थ भाषा नहीं चाहिए।

हंगेरियन भाषा उराल के भाषा-कुल की फिनिश-उग्रिएन शाखा की सदस्य है और इस शाखा में से सबसे ज्यादा लोग—डेढ़ करोड़—हंगेरियन भाषा बोलते हैं। भाषा-विज्ञान हंगेरियन भाषा को—प्रतीकात्मक से—अभिश्लिष्ट भाषाओं के वर्ग में रखता है और हिन्दी भाषा भारोपीय भाषा कुल की सदस्य है।

हमने यह बातचीत-पुस्तक हंगरी और भारत के सांस्कृतिक संबंध के आधार पर बनायी है। इस योजना के अनुसार आगरा या वाराणसी विश्वविद्यालय हिन्दी पढ़नेवाले हंगेरियन विद्यार्थी को प्रतिवर्ष एक छात्रवृत्ति देता है। आज तक हमारे पांच-छह विद्यार्थी भारत में हिन्दी पढ़ चुके हैं।

मैं सोचती हूं कि इस दिशा में जो कार्य किये गये हैं, या बाद में आनेवाले वर्षों में किये जायेंगे वे भारत के साथ हमारा संबंध बढ़ाने में सहायक होंगे यह कार्य हंगेरियन लोगों को भारतीय संस्कृति, साहित्य, इतिहास व भाषाओं से परिचित कराने में अधिक सहायक सिद्ध होगा।□

गयाना में भोजपुरी यानी हिन्दी

सुरेन्द्र गम्भीर

□□

भारतवंशी आज संसार के अनेक देशों में बसे हुए हैं। इनमें से पांच देश ऐसे हैं जहां भारतवंशियों का इतिहास आपस में बड़ी समानता रखता है। ये देश हैं—दक्षिणी अमेरिका के त्रिनिदाद, गयाना और सूरिनाम; प्रशान्त महासागर में फिजी और हिन्द महासागर में मारिशस। इन देशों में बसे भारतवंशियों के पूर्वज उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में भारत से जाने शुरू हुए थे और यह क्रम 1917 तक अविरल चलता रहा। इन पांचों देशों में भारतीय चीनी के कारखानों में मजदूरी करने के लिए गये थे। इनमें से अधिकांश मजदूर पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बिहार के इलाकों से थे। इन इलाकों में ये लोग प्रमुख रूप से इलाहाबाद, आजमगढ़, मिर्जापुर, बनारस, गाजीपुर, गोरखपुर, मेरठ, कानपुर, बरेली, आगरा, झांसी, जौनपुर, पटना, गया, आरा, सारन, तिरहूत, चम्पारन, मुंगेर, भागलपुर, पूर्णिया, लखनऊ, सीतापुर, सुलतानपुर, फैजाबाद और राय बरेली के हैं। इनके अतिक्ति कुछ लोग बंगाल, मद्रास, बम्बई, दिल्ली, पंजाब, मध्य प्रदेश और उड़ीसा से भी थे। ये अधिकांश मजदूर ऐसे थे जिनकी भारत में आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी और समाज में ये बड़ी दीन-हीन जातियों के समझे जाते थे। भर्ती की शर्तों के अनुसार ये लोग गये थे केवल पांच-पांच वर्षों के लिए परन्तु उन-उन देशों में मजदूरों की मांग बढ़ जाने के कारण वहां के मालिकों द्वारा दिये गये अनेक प्रलोभन, लगाये गये अनेक बन्धन, और इन सब के साथ भारत की बिगड़ती हुई आर्थिक और सामाजिक स्थिति को देखकर अधिकांश भारतवंशी मजदूर वहीं रह गये। परिणामतः आज उन्हीं पूर्वजों के वंशज इन देशों में विद्यमान हैं और आज वहां के सांस्कृतिक तथा राजनैतिक जीवन का अभिन्न अंग हैं।

प्रस्तुत लेख गयाना देश की भारतीय भाषाओं के बारे में है। गयाना में आज भारतीयों की संख्या कुल आबादी का लगभग 55 प्रतिशत है। संख्या की दृष्टि से इतने पूर्ण होते हुए भी ये भारतीय अपनी परम्परागत सभ्यता-संस्कृति के बाह्य उपकरणों की रक्षा करने में बहुत सफल नहीं रहे हैं। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों से प्रभावित होकर ये लोग अपने रहन-सहन, अपनी भाषा, अपने पहरावे में काफी परिवर्तन कर चुके हैं। इन सांस्कृतिक उपकरणों में दो जगह परिवर्तन विशेषरूप से शिथिल रहा है। एक है नित्य का भोजन, और दूसरा है सामाजिक एवं धार्मिक रीति-रिवाज। जिन क्षेत्रों में परिवर्तन की प्रक्रिया अभी चल

रही है उनमें भाषा विशेष रूप से हमारे सामने उभर कर आती है।

गयाना में भोजपुरी और हिन्दी की वर्तमान स्थिति समझने के लिए वहां की सम्पूर्ण भाषिक परिस्थिति का अवलोकन अनिवार्य है। आज कहीं चले जाइए—राजधानी जार्जटाउन में या अन्तरतम ग्रामीण क्षेत्रों में, जनसामान्य की भाषा अंग्रेजी का एक विकृत रूपान्तर है जिसे क्रियोल कहा जाता है। क्रियोल उस सम्मिश्रित भाषा का नाम है जिसे अफ्रीका से दासरूप में लाये गये नीग्रो लोगों ने अपने यूरोपियन मालिकों की भाषा को टूटे-फूटे रूप में धीरे-धीरे बोलना सीखा। इसलिए गयाना में मालिकों की भाषा अंग्रेजी होने के कारण वहां की क्रियोल का आधार अंग्रेजी बनी। इसी प्रकार सूरिनाम की क्रियोल का आधार डच रहा और मारिशस की क्रियोल का आधार फ्रेंच। अपने ही व्याकरण के नियमों में निबद्ध होने के कारण भाषिक दृष्टि से क्रियोल अंग्रेजी या किसी भी अन्य भाषा से हीन नहीं है, परन्तु सामाजिक महत्त्व की दृष्टि से क्रियोलभाषियों की अपनी दृष्टि में और अन्य की दृष्टि में क्रियोल अंग्रेजी से नीचा स्थान रखती है। परिणाम-स्वरूप ज्यों-ज्यों व्यक्ति की शिक्षा और उसका सामाजिक स्तर बढ़ता जाता है, उसकी क्रियोल में सुधरी हुई अंग्रेजी के तत्त्वों का समावेश होता जाता है।

क्रियोल-अंग्रेजी का यह मिला-जुला रूप वहां के समाज में सर्वत्र व्याप्त है। चाहे भारतवंशी हो या नीग्रो, चाहे पुर्तगीजी, चीनी या अमेरिइंडियन हो, सभी की लोकभाषा यही है। भारतवंशी किसी दूसरे भारतवंशी से व्यवहार कर रहा हो या किसी इतर जातीय नीग्रो आदि से, गली-कूचों की भाषा यही क्रियोल है। जनसामान्य के संलाप, प्रलाप, विलाप की यही भाषा है। इसी भाषा के माध्यम से दुकानों, दफ्तरों, स्कूलों, अस्पतालों, अदालतों में काम होता है। लोगों की अपनी रिपोर्ट के अनुसार इसी भाषा में उन्हें सपने आते हैं। इसी भाषा में भावनाओं से उद्वेलित प्रसंगों का निर्वाह होता है—चाहे वे प्रणय-प्रसंग हों या राजनीतिक सरगर्मी के प्रसंग। इसी क्रियोल में उनका दैनन्दिन विनोद और हंसी-मजाक चलता है।

गयाना में सार्वत्रिक क्रियोल के इस संदर्भ में भोजपुरी और हिन्दी की स्थिति ही प्रस्तुत लेख का चर्च्य विषय है। भोजपुरी और हिन्दी के अतिरिक्त तमिल भी कुछ मात्रा में गयाना में विद्यमान है। इनके अतिरिक्त कोई भी अन्य भारतीय भाषा न तो वहां सुनने को मिली और न ही उसकी चर्चा किसी ने की। गयाना में भारतीय भाषाओं के अध्ययन के अनेक महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं। भातवंशी अनेक भाषाएं और बोलियां अपने साथ लेकर गये थे, परन्तु अनेक कारणों से जिस व्यवहारभाषा का वहां के भारतीय समाज में उदय हुआ वह भारतीय भोजपुरी का ही एक रूपान्तर था। यह भोजपुरी लगभग 1920 ई० तक गयाना के भारतीय समाज की अपनी दैनन्दिन व्यवहारभाषा रही। परन्तु उसके बाद अनेक राजनैतिक एवं मनोवैज्ञानिक कारणों के फलस्वरूप उसके ह्रास का आरम्भ हुआ और क्रियोल धीरे-धीरे उसके व्यवहार-क्षेत्रों में स्थानापन्न होने लगी। पिछले लगभग साठ वर्षों में भोजपुरी और हिन्दी के क्रमिक ह्रास के परिणामस्वरूप आज विश्वास के साथ यह कहा जा सकता है कि गयाना के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक जीवन में कोई आश्चर्यकारी मोड़ आ जाये तो अलग बात है वरना अगले लगभग 25 वर्षों में भोजपुरी और हिन्दी वहां से लुप्तप्राय हो जायेंगी।

भोजपुरी और हिन्दी को मैंने इस लेख में भाषा-विज्ञान की मान्यता के अनुसार दो अलग भाषाओं के रूप में ही माना है। मजे की बात यह है कि गयाना का कोई भी भारतवंशी 'भोजपुरी' शब्द से परिचित तक नहीं और वह इसे 'हिन्दी' या 'हिन्दोस्तानी' कहता है। अपनी 'हिन्दी' या 'हिन्दोस्तानी' को ये लोग 'टूटलभाखा' की संज्ञा देते हैं और खड़ी बोली हिन्दी को

'ग्रामाटिकल' (= व्याकरण-सम्मत) मानते हैं।

भोजपुरी की वर्तमान स्थिति यह है कि विशेषकर गांवों में साठ वर्ष के लगभग और इस आयु से बड़े लोग अभी भी भोजपुरी में धाराप्रवाह बातचीत करने की क्षमता रखते हैं। उनके जीवन का कोई पक्ष ऐसा नहीं जिसे वे अपनी 'पुरनिया हिन्दी' में व्यक्त न कर सकें। अपनी सैकड़ों रिकार्ड की गयी भेंट-वार्त्ताओं में से एक नमूना यहां प्रस्तुत है। लगभग 69 वर्षीया निरक्षरा गयाना की मेरी एक 'नानी' देखिए क्या बता रही है :

"हिन्दुस्तानी में ऊ लोग कहें कि बौखारा लगल है, बौखारा। लरका के अउर थोरा सा ए के बौखारा दे दइ। ओ के ऊसीन के एक बर्तन में कर देवे अउर एक पीढ़ा पर बइठा के अउर एक ओढ़ा के खूब अइसे ब्लांकिट ओढ़ा देवे उपर, अइसे, बस, अइसे तब ऊ गरम त लेवो त पसीना छूटि, त जब ऊ पसीना छूटि त जोन खराब बोखार नस में होइ त सब पसीना में निकर जाइ। त ओकर बाद में ओइसने हि अब उस नलवाला पानी ले के खूब कपरा ले के खूब लोठा मार मार के नहुवा देवे, अउर ज्यादा ई कम्मर करीहांओ पर खूब लोठा मार के झट से पोंछे......"

35 और 55 के बीच के लोग जो कि मध्यम पीढ़ी के हैं इसे समझते जरूर हैं परन्तु उनके बोलने की क्षमता में पर्याप्त ह्रास हो चुका है और प्रयत्न करने पर भी वे स्वाभाविक रूप से भोजपुरी में बातचीत करने में अपने आपको असमर्थ पाते हैं। मेरे अनुरोध का आदर करते हुए आयासपूर्वक बोलते हुए जब ये लोग किसी भावुकतापूर्ण विषय पर आ पहुंचते हैं तो उन्हें स्वाभाविक अभिव्यक्ति के निमित्त क्रियोल। अंग्रेजी की ओर उन्मुख होना पड़ता है। भगवान् कृष्ण की भक्ति में अहर्निश सारा समय बितानेवाली 54 वर्षीया 'सिस्टर केवला' कृष्ण के बारे में बोलती-बोलती भावुक हो गयी और भावुकता के उस आवेश में उन्हें अंग्रेजी का सहारा लेना पड़ा :

'हमारा हिरदै जाने है कि भगवान् एकहिं हैं। उसके नाम है सतनारायन भगवान्, ओइस्नु भगवान्, कोई कहे ओंकार भगवान्, बट हम एक दिन भगवान् से पुछली किस कारन से आपके नाम है ओंकार भगवान्, आपके नाम है ओम्, बोले-नां, मेरे नाम ओम् नहीं है, मेरे..."

इसके बाद स्वर भावुकतापूर्ण हो गया और अंग्रेजी शुरू हो गयी। सिस्टर केवला की भोजपुरी में हिन्दी के इस स्पष्ट प्रभाव (किस, आप, मेरे आदि) के दो कारण हैं। एक कारण है धर्म का विषय और दूसरा है उनका अपना आर्थिक और शैक्षिक ऊंचा स्तर।

युवा पीढ़ी के लोग, जो 35 या 30 से नीचे हैं, भोजपुरी या हिन्दी न तो बोलते हैं और न समझ ही पाते हैं। समाज के इन तीन आयुवर्गों में भाषा के क्रमिक ह्रास का यह स्पष्ट लक्षण है।

वयोवृद्ध वर्ग के लोग इस भाषा में क्षमता होने पर भी इसका अधिक उपयोग नहीं करते। ये वे लोग हैं जिन्होंने अपने बाल और किशोर जीवन में अपनी आजी, नानी और मां से यह भाषा सीखी थी और उनके साथ बोली भी थी। बाद में, अपने बच्चों के साथ व्यवहार में इस भाषा का प्रयोग निरन्तर कम होता गया। सम्भवतः आरम्भ में पहली पीढ़ी के ये माता-पिता अपने बच्चों से भोजपुरी में ही बोलते थे, परन्तु दूसरी पीढ़ी के ये बच्चे माता-पिता की बात समझकर अपना उत्तर स्थानीय क्रियोल में देते थे। बच्चों के इस भाषा-चुनाव का प्रभाव आगे जाकर माता-पिता के भाषा-चुनाव पर भी धीरे-धीरे पड़ता गया। इसमें सन्देह की गुंजाइश नहीं कि इन दूसरी पीढ़ीवालों ने अपने बच्चों से व्यवहार में क्रियोल का ही आलम्बन लिया। इस प्रकार तीसरी पीढ़ीवालों ने न भोजपुरी सुनी और न सीखी।

ऐसा नहीं है कि पहली पीढ़ी के लोग भोजपुरी का प्रयोग बिल्कुल नहीं करते। धार्मिक विषयों की चर्चा में ये लोग प्रायः भोजपुरी और हिन्दी पर उतर आते हैं। धार्मिक उत्सवों पर भोजपुरी के लोकगीत अभी भी गाये जाते हैं। कभी-कभी अपनी बात को दूसरों से छुपाने के लिए भी भोजपुरी का आश्रय लिया जाता है। क्रियोल में बात करते-करते बीच-बीच में भोजपुरी छुटपुट सुनाई पड़ जाती है। छोटे-छोटे अभिवादनपरक वाक्य और आज्ञा या निवेदन-परक वाक्य भोजपुरी में खूब सुनने को मिलते हैं।

शब्दों के स्तर पर तो भोजपुरी के सैकड़ों शब्द ऐसे हैं जो वहां के जीवन में घुलमिल गये हैं और उनका प्रयोग सभी लोग करते हैं। रसोई से सम्बन्धित उपकरण (तवा, फूकनी, सील-लोरहा आदि), मसाले (नीमक, जइफर, हरदी आदि), सब्जियां (आलु, चोखा, कटैहल, दाल आदि), पकवान (महनभोग, फुलौरी, गुलगुला आदि), देवी-देवता एवं धर्म-संबंधी शब्द (सिउ, बिस्नु, झंडीकथा आदि), रिश्तों के वाचक शब्द (आजा, चचा, भाउजी भनोइ, बरकी आदि), धार्मिक एवं सामाजिक रीति-रिवाजों से सम्बन्धित शब्द (फगुआ, दीवाली, माटीकोर, दुअरपूजा, परछे, जरवास आदि), गाली-गलौच के शब्द (भरवा, दोगला कहीं के, चमार और दूसरी भारी-भारी गालियां जिसकी सूची मेरे पास है) सभी को पता हैं। आभूषणों के नाम— हेंगस, छूछी, नथिया, तिल्लरी इत्यादि। अनेक शब्द इन आभूषणों के क्रमिक कम उपयोग के कारण धीरे-धीरे लोगों के शब्द-भण्डार से लुप्त हो रहे हैं। अनेक भोजपुरी शब्द ऐसे हैं जो भारतवंशियों और नीग्रो लोगों की क्रियोल में भी पाये जाते हैं। सेके (सेंकना), बेले (बेलना), कूटे (कूटना), छाने (छानना) आदि अनेक पाक-क्रिया सम्बन्धी भोजपुरी क्रियाएं भारत-वंशियों की क्रियोल का अभिन्न अंग बन चुकी हैं।

धार्मिक प्रसंगों पर भोजपुरी की अपेक्षा हिन्दी का प्रयोग अधिक रहता है। मन्दिरों के पण्डित लोग अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए अधिक से अधिक खड़ी बोली हिन्दी का प्रयोग करने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे धार्मिक अवसरों पर खड़ी बोली हिन्दी का लगभग वही स्थान है जो भारत में संस्कृत का है। संस्कृत की तरह वहां हिन्दी में कही बात में औपचारिकता और शास्त्र-सम्मत होने का वजन आ जाता है। गयाना में भोजपुरी की आडियो-टेप बनाने के लिए मेरी इन पण्डित लोगों से जो बातचीत होती थी उसके लिए मेरी ओर से प्रश्न भोजपुरी में होने के बाव-जूद भी केवल पण्डितवर्ग ही ऐसा था जो अपना उत्तर देने के लिए खड़ी बोली हिन्दी बोलने का आयास करता था। बीच-बीच में विशेष अनुरोध करने पर भी कि वे लोग अपनी 'पुरनिया हिन्दी' में ही बतियायें कोई लाभ नहीं हुआ। बातचीत करते समय भाषा के प्रति सजगता इन लोगों में विशेषरूप से दृष्टिगोचर होती है। निस्सन्देह, खड़ी बोली हिन्दी का प्रयोग इनकी प्रतिष्ठा और पद की गरिमा को बनाये रखने में सहायक होता है।

हिन्दी के चलचित्र गयाना के भारतवंशी समाज में अत्यन्त लोकप्रिय हैं। इन चल-चित्रों को देखनेवाले अधिकांश वे युवा हैं जो भोजपुरी और हिन्दी से सर्वथा अपरिचित हैं। फिल्मों में सब-टाइटल्ज होते हैं जिनकी सहायता से कथा समझने में इन्हें कोई दिक्कत नहीं होती। ये ही युवा लोग हिन्दी फिल्मी गाने दिन-रात गुनगुनाते फिरते हैं। उनमें से कइयों ने मेरे अनुरोध पर मुझे कई फिल्मी गीत मूल फिल्मी स्वर में गाकर सुनाये। परन्तु दो-चार शब्द प्यार, महबूबा आदि छोड़कर ये लोग किसी भी पंक्ति का अर्थ कतई नहीं समझते। उच्चारण की दृष्टि से मूर्धन्य और दन्त्य व्यंजनों में वर्त्स्यता आ गयी है। अनेक लोग ये फिल्मी गीत और अन्य भजन आदि अपनी कापियों में रोमन लिपि में लिख लेते हैं क्योंकि देवनागरी लिपि से अपरिचित हैं।

यह ठीक है कि भोजपुरी ही वहां की व्यवहार-भाषा रही परन्तु भोजपुरीभाषियों के हृदय में खड़ी बोली हिन्दी के प्रति वही नेह और प्रतिष्ठा रही है जो क्रियोलभाषियों के लिए अंग्रेजी के प्रति है। उनके लिए भोजपुरी अशिक्षित लोगों की टूटी-फूटी भाषा है और हिन्दी शिक्षितों की साहित्य की भाषा है। इन लोगों के अनुसार भोजपुरी व्याकरणिक भाषा नहीं है जबकि हिन्दी व्याकरणसम्मत भाषा है। हिन्दी की इस सामाजिक प्रतिष्ठा का परिणाम यह हुआ है कि भोजपुरी पर भाषिक दृष्टि से हिन्दी का प्रभाव पड़ता रहा है। यह प्रभाव बोलनेवाले की सामाजिक स्तर-सम्बन्धी महत्त्वाकांक्षाओं के अनुरूप रहा। भविष्य में यदि गयाना में काल के आघातों से भोजपुरी और हिन्दी बच भी गयीं तो हिन्दी-शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ भोजपुरी का स्थान एक दिन 'ग्रामाटिकल' हिन्दी ले लेगी।

हिन्दी और भोजपुरी की इस सम्मान-स्थिति में अन्तर का सबसे बड़ा कारण भोजपुरी में लिखित पुस्तकों का अभाव और हिन्दी में लिखे साहित्य की प्रचुरता है। यह स्थिति भारत की भोजपुरी-हिन्दी स्थिति से बहुत भिन्न नहीं है। भारत की भांति गयाना में जब भी हिन्दी पढ़ने-पढ़ाने का प्रसंग आया तो खड़ी बोली ही पढ़ाई गयी। सरकारी विद्यालयों में हिन्दी कभी पढ़ाई नहीं गयी। स्कूल की पढ़ाई के बाद प्रतिदिन दोपहर को ईसाई मिशनरी भारतीय बच्चों को हिन्दी पढ़ाते थे। आर्यसमाज मन्दिरों और सनातनधर्म मन्दिरों में भी सायंकालीन कक्षाएं चलती रहीं। टैगोर स्कूल नामक विद्यालय में भी पिछले कुछ वर्षों से हिन्दी का अध्यापन हो रहा है। गत सत्र से लगभग छह स्कूलों में हिन्दी का शिक्षण प्रारम्भ किया गया है और मेरी सूचना के अनुसार कुछ अन्य स्कूलों में भी इसे शुरू करने का सरकार का प्रयास है। एक-दो लोग केन्द्रीय हिन्दी संस्थान की छात्रवृत्ति पर भारत आकर हिन्दी सीखकर गये हैं। विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए भारत आये कुछ दूसरे गयानी छात्र भी यहां से कुछ हिन्दी सीखकर जाते हैं। परन्तु इस सबसे सारी स्थिति में कुछ विशेष अन्तर आनेवाला नहीं है। सम्भव है कि कुछ मात्रा में हिन्दी भारतवंशियों की सांस्कृतिक भाषा के रूप में पुनर्जीवित हो जाये। व्यवहार की भाषा होने के लिए तो यह आवश्यक है कि दैनिक व्यवहार में उसका प्रयोग हो। भाषा का अस्तित्व भाष्यमाण होने से ही है। □

वाह प्रेमचंदजी

बस्ती के ताराशंकर 'नाशाद' मुंशीजी से मिलने लखनऊ पहुंचे। उन दिनों वह अमीनुद्दौला पार्क के सामने एक मकान में रहते थे। मकान के नीचे ही 'नाशाद' साहब को एक आदमी मिला, धोती-बनियान पहने। 'नाशाद' ने उससे पूछा, "मुंशी प्रेमचंद कहां रहते हैं, आप बतला सकते हैं?" उस आदमी ने कहा, "चलिए, मैं उनसे मिला दूं।"

वह आदमी आगे-आगे चला, 'नाशाद' पीछे-पीछे। ऊपर पहुंचकर उस आदमी ने 'नाशाद' को बैठने के लिए कहा और अंदर चला गया। जरा देर बाद कुर्ता पहनकर निकला और बोला, "अब आप प्रेमचंद से बात कर रहे हैं…।"

नेपाल में हिन्दी अनुसन्धान का क्षेत्र

डॉ० कृष्ण चन्द्र मिश्र

□□

हिन्दी भाषा तथा साहित्य के अनुसन्धान के सन्दर्भ में यदि यह कहा जाय कि 'नेपाल उसका मूल स्रोत रहा है' तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। हिन्दी साहित्य के आदिकाल के शोधकर्ता मनीषियों को पता है कि सिद्धों की वाणी के रूप में उसका जो कुछ प्राचीनतम अंश आज उपलब्ध है उसे काल के क्रूर विनाश से बचाकर सुरक्षित रखने का श्रेय नेपाल को ही है। घटना सन् 1907 की है जब म० म० हर प्रसाद शास्त्री को प्राचीन पाण्डुलिपियों की खोज करते हुए (तत्कालीन) 'नेपाल दरबार लाइब्रेरी' में सिद्धों के 50 पदों का एक संग्रह मिला, जिन्हें स्थानीय (नेवारी) भाषा में 'चचा' (चर्यागीत) के नाम से अब तक गाया जाता है। करीब 10 वर्ष बाद शास्त्रीजी ने इन गीतों की प्रतिलिपि 'बौद्ध गान ओ दोहा' के नाम से बंगला में प्रकाशित करायी। शुरू में बंगाली विद्वानों का विश्वास था कि इसकी भाषा प्रत्न-बंग भाषा है। बाद के अनुसन्धानों से यह सिद्ध हो गया कि ये पद मूलरूप में उसी मध्यदेशीय केन्द्राभिमुखी भाषा में रचित हैं, जिसका प्रतिनिधित्व कालक्रम से कभी पाणिनीय संस्कृत, शौरसेनी प्राकृत तथा हिन्दी ने किया है।

आधुनिक आर्य भाषाओं में साहित्य-रचना के आरम्भिक दिनों से ही हिन्दी तथा नेपाली भाषाभाषी साहित्यकारों की सहभागिता निर्विवाद सिद्ध है। प्राचीन सिद्ध तथा नाथ कवियों में अनेक ने नेपाल को अपनी लीलाभूमि बनायी थी। उनकी परम्परा नेपाल में आज तक विद्यमान है। सन्त कवियों के निर्गुण आन्दोलन का प्रभाव भारत में क्षीण हो जाने पर भी, नेपाल में बहुत बाद तक, उन्हीं के समानधर्मी 'जोसमणि' सम्प्रदाय के सन्त कवियों द्वारा रचित विपुल साहित्य-भंडार उपलब्ध है। हिन्दी के भक्त कवियों की उदात्त परम्परा का तेजस्वी रूप, जब रीतिकाल के दरबारी कवियों की भोगवासना से लिप्त वातावरण में हतप्रभ हो चला था, उस समय नेपाली के आदिकवि कहलानेवाले भानुभक्त ने साहित्य को रामभक्ति की विमल ज्योति से आलोकित किया।

हिन्दी के आधुनिकसाहित्य के जन्मदाता भारतेन्दु के काल में ही नेपाली के भी परिष्कृत आधुनिक साहित्य का बीजारोपण हो चुका था। यह मात्र सुखद संयोग ही नहीं एक ऐतिहासिक यथार्थ है कि भानुभक्त के जीवनीकार तथा नेपाली साहित्य में आधुनिकता का बीजमंत्र फूंकनेवाले लोकप्रिय कवि मोतीराम भट्ट भारतेन्दु मण्डल के कवि थे जिन्होंने उनका निकट सम्पर्क प्राप्त किया था तथा उनके असामयिक निधन पर अपनी मार्मिक वेदना श्रद्धांजलि की इन चार पंक्तियों में व्यक्त की थी :

बुद्धी मा सिन्धु जस्ता अगम, सहन मा भूमि जस्ता, सभामा
हुन् क्या वाचस्पती झैं, सरस वचनले मोह् पार्न्या कवित् मा
काशीवासी रसिकका मृदु हृदय विषे सर्वदा बीझ्ना मा
तत्पर यस्ता पुरुषको मरण किन भयो ? गैं दिये बेबखत् मा !

विधि का यह कैसा विधान था कि नेपाली साहित्य का यह इन्दु भी हिन्दी के भारतेन्दु की तरह अल्पायु में ही इस दुनिया से कूच कर गया। अनन्तर हिन्दी साहित्य के छायावादी युग की वेला में नेपाली महाकवि 'देवकोटा' तथा 'व्यथित' की काव्यसाधना का छायावाद से समानधर्मिता स्पष्ट है। स्व० लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा नेपाली के तपःपूत महाकवि थे जिनको महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने पन्त, निराला और महादेवी के 'त्रयोगुणाः' का सुन्दर समन्वय बताया था। इन दोनों महाकवियों ने, शौक के लिए ही सही, हिन्दी में भी पद्यरचनाएं की हैं। हिन्दी तथा नेपाली के साहित्यकारों की प्रेरणाभूमि की समानता तथा कलासृजन में सहभागिता अत्याधुनिक काल तक कायम रही है। नेबारी भाषाभाषी गीतकार कवि गोपालसिंह नेपाली ने हिन्दी साहित्य के महान् कवि के रूप में अतुल ख्याति अर्जित की है। इसी तरह हिन्दीभाषी कवि तथा कथाकार भवानी गुप्त 'भिक्षु' आज नेपाली के मूर्धन्य साहित्यकार हैं।

इस तरह के निकट सम्पर्कवाली भाषा और साहित्य के क्षेत्र में अनुसन्धानात्मक अध्ययन का महत्त्व स्वतः सिद्ध हो जाता है, इस दिशा में छिटपुट रूप में कुछ आरम्भिक कार्य हुए भी हैं, मगर अभी बहुत कुछ बाकी है। आवश्यकता है इस क्षेत्र में एक सुनिश्चित सर्वांगीण कार्यक्रम की जिसका प्रारूप इस क्षेत्र की समस्त सम्भावनाओं को दृष्टि-परिधि में रखकर बनाया गया हो और जिसे विभिन्न अंशों और चरणों में अनुसन्धान के द्वारा पूरा किया जा सके।

मेरे विचार में नेपाल में हिन्दी से सम्बद्ध अनुसन्धान के तीन मुख्य कार्यक्षेत्र हो सकते हैं :

1. भाषिक, 2. साहित्यिक, और 3. सांस्कृतिक

विस्तार में जाने से पहले यहां यह बता देना उचित है कि इस सम्बन्ध में अब तक जो कुछ शोधकार्य हुआ है उसका अधिकांश केवल साहित्यिक और उसमें भी तुलनात्मक अध्ययन में लगा है।[1] तुलनात्मक भाषाविज्ञान की दृष्टि से भी इन दोनों भाषाओं के अध्ययन की ओर कुछ विद्वानों का ध्यान गया है। मगर अब तक का सबसे उपेक्षित किन्तु मेरे विचार में, सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र रहा है इन दोनों भाषाओं के आदिकालीन स्वरूप तथा साहित्यरूपों के विकास का

1. इस सम्बन्ध में स्वतंत्र रूप से अध्ययन बहुत कम देखने में आया है। अब तक विभिन्न विश्वविद्यालयों से स्वीकृत शोधप्रबन्ध ही हमारे सामने उसके उदाहरण हैं। अब तक मेरी जानकारी में आये शोधप्रबन्धों के विषय और लेखकों के नाम इस प्रकार हैं :

नेपाली और हिंदी भक्तिकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन (प्रकाशित)	: डॉ० मथुरा दत्त पाण्डेय
नेपाल के हिंदी कवि	: रुद्रेन्द्र नाथ शर्मा
भानुभक्त और तुलसीदास	: कमला सांकृत्यायन
भानुभक्त और तुलसी के भक्तिकाव्य	: डॉ० सूर्य देव सिंह 'प्रभाकर'
हिंदी और नेपाली समसामयिक कविता	: डॉ० राम दयाल 'राकेश'
हिंदी और नेपाली आधुनिक कविता	: डॉ० प्रभावर्मा
नेपाली और हिंदी का नाट्य साहित्य	: डॉ० केवल किशोर मिश्र

'नेपाली साहित्य का इतिहास' सम्पूर्ण रूप से अभी नेपाली या अन्य किसी भाषा में नहीं प्रस्तुत किया गया। हिंदी में डॉ० दीनानाथ शरण द्वारा लिखित इस विषय का एक ग्रंथ प्रकाश में आया है। मगर शोध और शुद्धता की परवाह किये बिना शीघ्रता में प्रकाशित यह ग्रंथ व्यावसायिक लाभ की दृष्टि से इतिहास लेखन का एक अजीबोगरीब नमूना बनकर रह गया है।

ऐतिहासिक अनुशीलन का क्षेत्र। प्रायः, इस विषय में 'सामग्रियों' के कच्चेमाल की उपलब्धि की कठिनाइयां आधुनिक शोध-उद्यमियों की उपेक्षा का मुख्य कारण हैं। किन्तु ध्यान रखना होगा कि इतिहास—चाहे वह भाषा या साहित्य का ही क्यों न हो—के शोध में सामग्री-संकलन और परीक्षण ही शोधकों की लगन का मानदण्ड है। इसके बिना इस क्षेत्र में कोई भी तात्विक शोध-कार्य आगे नहीं बढ़ सकता। अतः इस क्षेत्र पर ध्यान केन्द्रित करना आज नेपाल में हिन्दी शोध-कार्य करनेवालों की प्राथमिक आवश्यकता है।

अब हम उपर्युक्त तीनों क्षेत्रों में शोध की सम्भावनाओं पर क्रम से एक नजर डालें।

भाषिक क्षेत्र

नेपाली भाषा के सम्बन्ध में अनुसन्धान कार्य बहुत पहले प्रारम्भ हुआ। टर्नर का प्रसिद्ध नेपाली शब्दकोष, समस्त आधुनिक आर्यभाषाओं में अपनी तरह का पहला भाषावैज्ञानिक कोष है। इसमें अन्य भाषाओं के साथ नेपाली शब्दों के हिन्दी प्रतिरूपों का अच्छा खासा संकलन है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने नेपाली के साथ यहां बोली जानेवाली 'थारू' और 'भोटी' आदि भाषाओं की विशेषताओं पर विचार व्यक्त किये हैं। दयानंद श्रीवास्तव ने 'नेपाली भाषा और साहित्य' में हिन्दी-नेपाली भाषा के सम्बन्धों का विवेचन किया है। बाद के नेपाली भाषा वैज्ञानिकों बालकृष्ण पोखरेल चूड़ामणि 'बन्धु' आदि ने इस विषय पर टिप्पणी की है। हिन्दी तथा नेपाली भाषाओं की व्याकरणिक विशेषताओं के विश्लेषणात्मक अध्ययन पर भी इधर शोधकर्ताओं का ध्यान गया है। हाल ही में डॉ० गौरीशंकर सिंह ने हिन्दी तथा नेपाली की कारक-रचनाओं के तुलनात्मक अध्ययन पर शोध प्रबन्ध लिखा है। किन्तु इस क्षेत्र में भी हिन्दी शोधकर्ताओं के लिए आधारभूत कार्य अभी अछूता रह गया है। इन दोनों भाषाओं के आरम्भिक रूपों तथा समकालीन बोलियों का अनुसन्धान आवश्यक है। नेपाली भाषा का मुख्य घटक 'खस कुरा' है कामोज बोन मुख्य रूप से ली पश्चिमी पहाड़ी प्रदेश में बोली जाती है। इसका खड़ी बोली से घनिष्ठ सम्बन्ध अत्यन्त स्पष्ट है। काठमाण्डू उपत्यका तथा पूर्व नेपाल में प्रचलन से पहले नेपाली मुख्य रूप से पश्चिमी पर्वती इलाकों की ही भाषा थी। यहां की भाषिकाओं का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन न केवल नेपाली के उद्गम पर प्रकाश डालेगा बल्कि हिन्दी के प्राचीनतम रूपों को भी रेखांकित करेगा। शौरसेनी प्राकृत इन दोनों भाषाओं का उद्गमस्रोत है। अतः आरम्भिक काल में इन दोनों भाषाओं की समरूपता में अधिक सन्देह नहीं रह जाता। इस कार्य के लिए प्राचीन अभिलेखों तथा मौखिक अथवा अन्य स्रोतों से उपलब्ध सभी प्रकार की सामग्रियों का भाषा-इतिहास की दृष्टि से विश्लेषण होना चाहिए। इस तरह की सामग्रियां अभी बहुत कम प्रकाशित हुई हैं और अधिकांश अभिलेखों और पाण्डुलिपियों के रूप में हैं। 'इतिहास प्रकाशः सन्धि पत्र संग्रह' में ऐसे कितने ही पत्रों व दस्तावेजों का संकलन हुआ है जिनसे 18 वीं सदी के हिन्दी गद्य का स्वरूप उजागर होता है। उदाहरणार्थ मकवानपुर (मध्य नेपाल) के सेन राजाओं के एक पत्र की भाषा इस प्रकार है:

"आगे महन्त सुमरण दास को प्रगन्ना राडी मध्ये मौजे जनकपुर पृति (बृत्ति ?) वहाल कै दिया है। अपने खातिर जम्मा सै वसै वसावै आवाद कै कुस विर्ति जानि सर्व अंक बेतलव भोग्य किया करै...सम्वत् 1828।"

उस समय नेपाल राजदरबार से राज्य के सुदूर मैदानी इकाकों में अक्सर स्थानीय भाषा में निर्देश-पत्र आदि भेजे जाते थे। इन पत्रों में साधु हिन्दी गद्य का वह नमूना मिलता है, जो उस समय उत्तर भारत में उर्दू के बढ़े महत्त्व के कारण, अप्राप्य था। हिन्दी गद्यभाषा के विकास

की दृष्टि से इन सामग्रियों का अन्वेषण और अनुशीलन अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। इस सन्दर्भ में एक महत्त्वपूर्ण प्रकाशित सामग्री है 'इतिहास प्रकाश' में 'रतनबोध।' संग्रहकर्ता के अनुसार इसकी पाण्डुलिपि 600 वर्ष पुरानी है। 'रतनबोध' नाथ योगियों में प्रसिद्ध श्री रत्ननाथ को दिये उपदेश का एक अंश है। इसकी भाषा की एक बानगी :

"भले भले हो राजेसुरा तुम कहौ तो हमवी न षावै तुम कहौ तो नगर कूं नहि खिलावै। बजाया नाद किया ॐकार। आसन भरिया बज्र नगर कीया बंध। इतनी वारता सुन अचेत राजा सचेत भया। तव छाड महल कूं गया।...."

यदि इसकी पाण्डुलिपि के परीक्षण से उपर्युक्त प्राचीनता प्रमाणित हो तो इसे खड़ी बोली हिन्दी गद्य का दुर्लभ प्राचीनतम नमूना माना जायगा। इतिहास प्रकाश में ऐसी अनेक सामग्रियां हैं जिनमें 'दंगी शरण कथा' नामक एक रोचक अर्धपौराणिक उपाख्यान अपनी साहित्यिक शैली तथा विशेष प्रकार की सधुक्कड़ी भाषा के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मध्यकालीन नाटकों में भी हिन्दी गद्य-पद्य का व्यवहार हुआ है। उन्नीसवीं सदी के नेपाली कवि-वाणीविलास पाण्डेय तथा सुवानन्द दास (नेपाली के आदि कवि) आदि की रचनाएं हिन्दी खड़ी बोली काव्यभाषा के विकास की दृष्टि से अध्ययन योग्य हैं। ज्ञातव्य है कि इन कवियों ने खड़ी बोली का काव्य में प्रयोग तब किया जब उत्तरी भारत में ब्रजभाषा को ही इस कार्य के उपयुक्त माना जाता था। आवश्यकता इस बात की है कि नेपाल में उपलब्ध, प्रकाशित, अप्रकाशित, सारी सामग्रियों का कालक्रमानुसार भाषा की दृष्टि से विवेचन हो। नाथ-सिद्ध काल की, 'सन्धा' भाषा से लेकर, प्राचीनतम सधुक्कड़ी, ब्रज, अवधी, उर्दू तथा खड़ी बोली हिन्दी के साथ नेपाली के सम्बन्ध-प्रभाव का विश्लेषण किया जाना चाहिए। किन सामाजिक भौगोलिक राजनीतिक कारणों से इन भाषाओं के सम्बन्धों में उतार-चढ़ाव आया जिसकी परिणति वर्तमान विशिष्ट स्वरूप में हुई, उस विषय के अध्ययन से ही नेपाली तथा हिन्दी दोनों के विकास की ऐतिहासिक गाथा पूरी तरह कही जा सकेगी।

साहित्यिक

इस क्षेत्र में शोध से मेरा तात्पर्य, साहित्यिक विशेषताओं, यथा काव्यविधा, शैली तथा प्रवृत्तियों की दृष्टि से नेपाल में उपलब्ध सामग्रियों के अध्ययन से है। अब तक हुए शोधकार्य में विद्वानों का ध्यान इसी तरफ अधिक रहा है। पर इस क्षेत्र में भी, शोध की एक प्रथा की तरह नेपाली और हिन्दी साहित्य के कुछ विशेष काल या कवि के तुलनात्मक अध्ययन का अधिक प्रचलन हो गया है। कुछ भक्तिकाव्य, नाटक तथा आधुनिक कविताओं का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन हुआ है। मगर यहां भी आधारभूत अनुसन्धानक्षेत्र की दिशा में किसी ने पग नहीं बढ़ाया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि हिन्दी साहित्य की परम्परा की खोज की दृष्टि से नेपाल में उपलब्ध सामग्रियां अत्यन्त महत्त्व की हैं। यह मात्र संयोग नहीं कि सिद्धों और नाथों की कविता का संकलन नेपाल में प्राप्त हुआ। यहां उनकी सशक्त दीर्घकालीन परम्परा और प्रभावक्षेत्र रहा है जिसने आगे चलकर 'जोशमणि' नामक योग-सम्प्रदाय के हिन्दी तथा बाद में नेपाली कवियों की एक समृद्ध काव्य-परम्परा को विकसित किया। उनका प्रभाव आगे तक नेपाली की भक्ति रचनाओं पर पड़ा। अब तक यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि सिद्धों और नाथों में कौन-कौन नेपाल के थे। नेपाल के 'जोशमणि' निर्गुणिया साहित्य के उद्धारक श्री जनकलाल शर्मा के अनुसार 84 सिद्धों में से अनेक नेपाल के ही रहनेवाले थे। केवल भारत में मुसलमानों के अत्याचार से बचने हेतु कुछ काल के लिए नेपाल को आश्रय बनाने

की बात सारे के सारे इन सन्तों पर लागू नहीं हो सकती। मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ आदि महान् गुरुओं का व्यापक प्रभावक्षेत्र नेपाल में अब तक विद्यमान है। यहां की परम्परा उनकी जन्मभूमि नहीं तो दीर्घकाल तक की कर्मभूमि इसी क्षेत्र को सिद्ध करती है। सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से शोध का यह महत्त्वपूर्ण मुद्दा है।

नाथ सन्तों की अनेक रचनाएं नेपाल के अनेक स्थानों पर उनके मठों तथा अनुयायियों के पास लिखित या मौखिक रूप में सुरक्षित हैं। ऊपर दंगीशरण कथा की चर्चा हुई है। वह दोहा-चौपाई में लिखी गयी सधुक्कड़ी भाषा (अवधी-मिश्रित) की एक सुन्दर रचना है। रतन नाथ का उल्लेख गोरखनाथी पन्थ के साहित्य में अन्यत्र भी हुआ है। पश्चिम नेपाल के दाङ जिला में 'रतननाथ' मठ से प्राप्त इनके उपदेशों का एक अंश अत्यन्त परिष्कृत शैली के साधु पुरानी हिन्दीगद्य का नमूना है। ऐसी अन्य अप्रकाशित सामग्रियों की खोज और छानबीन फलदायक सिद्ध होगी।

नाथसिद्धों की परम्परा में ही नेपाल में 'जोशमणि' निर्गुण सम्प्रदाय का विकास हुआ लगता है। उस सम्प्रदाय का नेपाल में बड़ा व्यापक प्रभाव था। काठमांडू के अनेक उच्च अधिकारी तथा स्वयं श्री 5 रणबहादुर शाह इस मत में दीक्षित हुए थे। इस मत के हिन्दी तथा नेपाली काव्य का अन्वेषण तथा सम्पादन श्री जनकलाल शर्मा ने बड़े परिश्रमपूर्वक किया है। इस सम्प्रदाय का कबीरमत से सम्बन्ध की ऐतिहासिकता अब भी शोध का विषय है।

'जोशमणि' सम्प्रदाय का काव्य भक्तिकाव्य के अन्तर्गत आता है। किन्तु हिन्दी की भांति ही नेपाली साहित्य का आदिकाव्य वीर गाथाओं का है। नेपाली की उपलब्ध प्राचीनतम कविताएं सुवानन्द का कवित्त तथा 'साढ्या को कवित्त' आदि ओजस्विता से फड़कते हुए छन्दों में हैं। भाषा की दृष्टि से ये प्राचीन (खड़ी बोली) हिन्दी के अत्यन्त निकट हैं। उस समय तक नेपाली भाषा का स्वतन्त्र व्यक्तित्व कायम हो चुका था। पर यहां के राजदरबारी कविगण भी आभिजात्य के कारण केवल संस्कृत या ब्रजभाषा (पुरानी हिन्दी) में ही कविता लिखने में गौरव समझते थे। उदाहरणार्थ, 19वीं शताब्दी के नेपाल के 'बड़ा पंडित' वाणी विलास पांडेय ने काठमांडू नारायण हिटी शिलालेख में संस्कृत के अतिरिक्त ब्रजबोली में ही पदों की रचना की है। काठमांडू केलटोल शिलालेख तथा गुह्येश्वरी में अमरसिंह थापा के शिलालेख में संस्कृत के अतिरिक्त ब्रजभाषा में कविताएं हैं। विद्यारण्य केसरी (ईसवी 19 वीं सदी का पूर्वार्ध) ने तो नेपाली के साथ मुख्य रूप से हिन्दी में ही काव्यरचना की है।

नेपाल के चारण कवियों के वीरकाव्य का अपना महत्त्व है। जब उत्तर भारत के कविगण विलासिता के पंक में आकंठ मग्न, नायिका की नख-शिख छवि निहारने में लगे थे तो भूषण और सुवानन्द जैसे वीररस के कवियों ने, सुदूर दक्षिण में महाराष्ट्र के शिवाजी और हिमालय की पहाड़ियों पर तलवार चमकानेवाले वीर पृथ्वीनारायण शाह की प्रशंसा से अपनी वाणी को पवित्र किया। इन कवित्तों का भाषा, छन्दबन्ध तथा अलंकार आदि की दृष्टि से अपना महत्त्व है। ये प्राचीन रासो काव्य की गाथाशैली से भिन्न एक वीरस्तुति के रूप में लिखे गये हैं। उस समय जब आर्यावर्त के अन्य राजागण फिरंगियों के कुचक्र से बेखबर मोहनिद्रा में पड़े थे हिमालय की पूरी महाभारत पर्वत श्रेणी पृथ्वी नारायण और उनके वीर अनुयायियों के घोड़ों की टाप से अहर्निश गूंज रही थी। वे स्वतन्त्र हिन्दू राज्य के संघटन के लिए अथक प्रयास में जुटे थे। उनके इस पुनीत कार्य के साक्षी तथा काव्य में उन्हें अमर बनानेवाले इन चारण कवियों का अपना योगदान था।

इसी श्रेणी में गढ़वाल के कुछ हिन्दी कवियों की नेपाल-सम्बन्धी रचनाएं भी आती हैं।

गढ़वाल, कुमाऊं सन् 1790 से 1804 तक गोरखा राज्य के अधीन था। उसी समय के कवि 'गुमानी' की संस्कृत तथा भाषारचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं। उनके अध्ययन से नेपाल का इतिहास तथा तत्कालीन काव्य-प्रवृत्तियों के शोध में मदद मिलेगी। इसी तरह गढ़वाल के सुप्रसिद्ध कवि मोलाराम (ईसवी 18वीं सदी का उत्तरार्ध) की नेपाल-सम्बन्धी अनेक हिन्दी-काव्य पुस्तकों का पता चला है। मोलाराम की शैली में ओजस्विता और स्पष्टवादिता का भर-पूर गुण है। वे स्वयं नेपाल उपत्यका में रहे थे तथा यहां रहकर 'रणबहादुर चन्द्रिका' और 'शमशेर जंग चन्द्रिका' की रचना की थी। इन काव्यों का अध्ययन अवान्तरकालीन चारण-साहित्य की शैली तथा इतिहास दोनों दृष्टियों से फलदायक सिद्ध होगा। इस तरह के अन्य कवियों की रचनाएं भी खोज से प्राप्त हो सकती हैं। क्योंकि उस काल में चारण कवियों की एक समृद्ध परम्परा थी। उदाहरणार्थ तत्काल के किसी अंग्रेज सेनापति द्वारा, गोरखों की प्रशंसा में लिखित एक वीर गीत का अंग्रेजी अनुवाद मिला है, जिसके कवि का नाम 'हीरा गाइनेनी' बताया गया है। इस कविता की मूल भाषा का पता नहीं है पर शैली से स्पष्टतः यह सुवानन्द साढ़्या को कवित्त तथा मोलाराम की रचनाओं के अनुरूप है। इन रचनाओं की खोज, संकलन तथा अध्ययन से हिन्दी-नेपाली वीरगाथा काव्यों का इतिहास पूरा हो सकेगा।

भक्तिकाव्य के सन्दर्भ में एक महत्त्वपूर्ण विपुल सामग्री, जो अबतक नेपाल तथा भारत के शोधकर्ताओं की नजर से ओझल रही है। जनकपुर के भक्त कवियों की रचनाएं—वर्तमान जनकपुर का पुनरुत्थान प्राय दो ढाई सौ वर्ष पूर्व हुआ। तब से यहां वैष्णव मठों और मन्दिरों की भरमार हो चुकी है। यहां के प्रसिद्ध जानकी मन्दिर, रसिक निवास, रामानन्दाश्रम आदि प्राचीन साम्प्रदायिक मठों में विद्वान् सन्त-महन्तों की परम्परा अबतक कायम है। वे अबतक अवधी-ब्रज में काव्यरचना करते हैं। कुछ नये साधुओं ने खड़ी बोली में भी काव्य-रचना की है। इनका विपुल साहित्य आश्रमों में कुछ प्रकाशित तथा अन्य अप्रकाशित रूप में मिलता है। यहां के सन्तों पर रामभक्ति की श्रृंगारिक साधना का प्रभाव है। इनमें सबसे प्राचीन रचना 'सीतायन' (रामायण) है। सीतायन के रचयिता महात्मा सूर किशोर माने जाते हैं जो जनक-पुर की सबसे प्राचीन जानकी मूर्ति (किशोरीजी) के अधिष्ठाता थे। उनका समय इसवी की 17वीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना गया है। वे प्रायः अयोध्या से मिथिला की ओर आये थे जिसका संकेत उन्होंने स्वयं यों किया है :

> वरणाश्रम धर्म बिचार गयो, द्विज, तीरथ, देव भये शिथिला।
> रहि और न ठौर कहूँ जग में, तब सूर किशोर तकी मिथिला।

सूर किशोर के परवर्ती रामभक्ति के सखी सम्प्रदाय के कवि रसिक अली का मिथिला में बड़ा सम्मान है। जनकपुर का यह समस्त सन्त साहित्य खोज, संकलन तथा अध्ययन की दृष्टि से हिन्दी के अनुसन्धित्सुओं के लिए अत्यन्त आकर्षक तथा उपादेय सामग्री प्रस्तुत करता है।

आधुनिक काल में भी जनकपुर के स्व० श्री रमाकान्त झा तथा शास्त्री सुन्दर झा आदि ने हिन्दी में अच्छी काव्य-रचना की है, जिनके कुछ अंश प्रकाशित हैं। आधुनिक काल में नेपाल में हिन्दी में साहित्यरचना अत्यल्प मात्रा में हुई है, फिर भी, गुण, क्षेत्र विस्तार तथा शैली की दृष्टि से इनका संकलन और नयी प्रवृत्तियों का अध्ययन साहित्य के खोजियों के लिए फलदायक सिद्ध होगा। हिन्दी के आधुनिक साहित्य को नेपाल की महान् देन स्व० श्री गोपालसिंह 'नेपाली' हैं, जिनके व्यक्तित्व और काव्य-प्रवृत्तियों का इस पृष्ठभूमि में सम्यक मूल्यांकन किसी ने प्रस्तुत नहीं किया। नेपाल के प्रसिद्ध उपन्यासकार 'धू-स्वा-सायमि' (गोविन्द बहादुर मानन्धर) ने

अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त हिन्दी में कहानी तथा उपन्यास लिखे हैं।

इसके अतिरिक्त भारतीय साहित्यकारों द्वारा नेपाल के सन्दर्भ में लिखी गयी अनेक रचनाएं पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुई हैं। इनमें स्व० फणीश्वरनाथ रेणु 'नेपाली क्रान्ति कथा', श्री बलभद्र ठाकुर 'नेपाल की वो बेटी', बिराज 'नेपालेश्वर' आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें अधिकतर ऐतिहासिक सन्दर्भ पर हैं। उनके द्वारा वर्णित तथ्यों की शुद्धता और दृष्टिकोण एवं शैली मौलिकता का विवेचन हिन्दी-नेपाली साहित्यकारों के बीच पारपपरिक आदान-प्रदान को विशेष उपादेय बनायेगा।

सांस्कृतिक क्षेत्र

भाषिक तथा साहित्यिक क्षेत्र के अतिरिक्त सांस्कृतिक इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से भी, नेपाल में उपर्युक्त उपलब्ध तथा अन्य अनुद्‌घाटित सामग्रियों का अनुशीलन, आर्यावर्त के पिछले एक हजार वर्ष के सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक इतिहास पर अपेक्षित प्रकाश डाल सकता है। सिद्धों और नाथों के बारे में हिन्दी में बहुत कुछ लिखा गया है। पर इस सम्बन्ध में नेपाल की अपनी व्यापक प्राचीन परम्परा तथा विपुल सामग्री का अनुसन्धान कर इस भूखंड से इन सम्प्रदायों के घनिष्ठ सम्बन्ध के कारणों का पता लगाना होगा। केवल राजनीतिक कारणों से उत्तर भारत के सिद्धों द्वारा हिमालय में आश्रय लेने तथा उनके साहित्य की यहां उपलब्धि को 'संयोग' बताकर अनुसन्धान की कठिनाइयों से छुट्टी नहीं ले लेनी चाहिए। पुराकाल से, नेपाल में बौद्ध और शैव मतों का सह-अस्तित्व तथा उनका आन्योन्याश्रित विकास एक ज्ञात तथ्य है। इन सम्प्रदायों की उपलब्ध साहित्यिक सामग्रियों के सन्दर्भ में यहां के मानव-भूगोल, मूर्तिकला और स्थापत्य का भी अध्ययन आवश्यक है। नाथसिद्धों द्वारा बृहत्तर हिन्दू धर्म के विकास में योगदान का इतिहास की गवेषणा के लिए नेपाल में अध्ययन अब भी शेष है।

जोशमणि सम्प्रदाय की चर्चा ऊपर हो चुकी है। इस सम्प्रदाय की उत्पत्ति, विकास तथा प्रभाव का अध्ययन समाजशास्त्रीय दृष्टि से उपादेय होगा।

हिन्दी तथा नेपाली के भक्तकवियों का जो कुछ तुलनात्मक अध्ययन हुआ है, उसमें नेपाल के भक्तकवियों की जातीय तथा सांस्कृतिक इतिवृत्त की ओर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया है। नेपाली के अधिकांश भक्तकवि साम्प्रदायिक भक्त नहीं थे। स्वयं भानुभक्त भी साधु नहीं गृहस्थ थे। इन कवियों के धार्मिक तथा सामाजिक परिवेश के अध्ययन से इनकी प्रेरणाभूमि और साहित्यिक विशेषताओं का सम्यक ज्ञान होगा।

आत्याधुनिक काल में आकर नेपाल में हिन्दी में मौलिक लेखन बहुत कम हुआ है। पिछली चौथाई शताब्दी की अल्प अवधि में ही राष्ट्रभाषा होने के नाते नेपाली भाषा ने व्यापक प्रचार के कारण लोकप्रियता अर्जित की है। नेपाली में मौलिक साहित्य का सृजन भी खूब बढ़ा है और इधर विश्व के श्रेष्ठ साहित्य का अनुवाद कार्य भी हो रहा है। मगर हिन्दी से नेपाली में अनूदित पुस्तकों की संख्या एक हाथ की उंगलियों पर भी गिनने के लिए काफी नहीं है। नेपाली से हिन्दी में अनुवाद तो और भी कम हुआ है। इसका कारण इन दोनों भाषाओं की सन्निकटता ही है। फिर भी इन दोनों सहोदरा भाषाओं की आधुनिक श्रेष्ठ कृतियों का अनुवाद, भाषाविकास के कारण तथा शैली की मौलिकता की परख के लिए भी आवश्यक है। खासकर, हिन्दी में नेपाली की श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियों का अनुवाद और आवश्यक है, क्योंकि इसी अभाव के कारण विशाल हिन्दी पाठक वर्ग के बीच एक समान सांस्कृतिक सम्पदा की अमूल्य निधियां अज्ञात रह जाती हैं। आधुनिक साहित्य के तुलनात्मक अध्येताओं को इन दोनों भाषाओं के

साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, उसकी समानताओं तथा विषमताओं, मसलन् दोनों क्षेत्रों की धार्मिक तथा राजनीतिक वस्तुस्थितियों का गहराई से विश्लेषण करना चाहिए, तभी इन दोनों साहित्यों की मौलिक विशेषताओं का उचित मूल्यांकन हो सकेगा, तथा वे एक-दूसरे के विकास में साधक भी हो सकेंगे।

नेपाल में हिन्दी भाषा, साहित्य तथा संस्कृति से सम्बद्ध अनुसन्धान-अध्ययन का क्षेत्र विशाल तथा सम्भावनाएं अपरिमित हैं। इस सम्बन्ध में अबतक जो कार्य हुए हैं उनमें आधारभूत अनुसन्धान का ही अभाव है। बहुत अंश तक यह अध्ययन छिटपुट या पल्लवग्राही किस्म का है। इसका कारण प्रायः कच्चे माल के रूप में, प्राचीन, बिखरी, अज्ञात सामग्रियों से अपरिचय तथा उनकी खोज के लिए पहल का अभाव है। आज आवश्यकता है इसके लिए एक सुनियोजित कार्यक्रम तथा उसपर अमल के लिए आवश्यक साधन जुटाने की, जिसे राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर सहयोग द्वारा पूरा किया जा सकता है। □

अंग्रेजी में हंसो

कन्नड़ के विख्यात उपन्यास-लेखक शिवराम कारंत जिस हाई स्कूल में पढ़ते थे, उसके मुख्याध्यापक ने नियम बना रखा था कि बड़ी क्लासों के विद्यार्थी सदा अंग्रेजी में ही बातचीत किया करें। मुख्याध्यापकजी जिसे भी कन्नड़ में बातें करते देख लेते, उसे सजा भुगतनी पड़ती थी। कारंतजी इसका इलाज करना चाहते थे। एक दिन जब मुख्याध्यापकजी कहीं पास ही थे, उन्होंने अपने एक साथी से कोई मजाकिया बात कही और जब वह हंसने लगा, तो बनावटी गुस्से में जोर से बोले, "फूल ! ह्वाइ डू यू लाफ इन कन्नड़ ? यू आर ए हाईस्कूल स्टूडेंट। लाफ इन इंग्लिश।" तीर ठीक निशाने पर लगा। मुख्याध्यापक ने फिर कभी किसी को कन्नड़ में बात करने पर दंड नहीं दिया।

हिन्दी राष्ट्रभाषा क्यों ?

डॉ० आरिगपूडि

□□

हिन्दी का एक बहुसंख्यक भाषा होना उसके अन्तर्प्रादेशिक, सर्वभारतीय रूप को अतिरिक्त महत्ता देता है। हिन्दीतर प्रान्तों में जितना हिन्दी का प्रचार है, किसी और भाषा का नहीं है। बात केवल भाषा के प्रचलन की ही नहीं है, अपितु तत्सम्बद्ध भावात्मक प्रेरणाओं की भी है।

यह राष्ट्रीय आन्दोलन की भाषा थी। राष्ट्रीय आन्दोलन प्रान्तीय आन्दोलन न था, पर सम्पूर्ण भारतीय आन्दोलन था। इसलिए हिन्दी का स्वागत राष्ट्रीयता के वाहक के रूप में अन्य प्रान्तों में भी हुआ। परतन्त्र भारत में, हिन्दी स्वतन्त्र चेतना की भी भाषा थी। किन्तु स्वतन्त्र भारत में जबकि प्रान्तीयता उभर रही है, हिन्दी का क्या स्थान है ? किसी राष्ट्रीय आन्दोलन की अनुपस्थिति में इसकी क्या स्थिति है ? क्या राष्ट्रीय एकता के लिए इसके अन्तर्प्रादेशिक रूप को निखारना आवश्यक नहीं है ? भारतीय भावात्मक समन्वय में इसकी क्या भूमिका है ? यह राष्ट्रीयता के विकास के लिए कैसे कारगर साधन बन सकती है ?

इस सम्बन्ध में यह विचारणीय है कि हिन्दी ही राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए एक दृढ़ सूत्र कैसे बन सकी ? कैसे हिन्दी का प्रचलन बढ़ा ? इसकी पृष्ठभूमि में अनेक ऐतिहासिक और सामाजिक कारण हैं।

कहा जाता है कि हिन्दी और उर्दू एक भाषा के दो रूप हैं। यह कहां तक ठीक है, यहां विषयान्तर अवश्य होगा। किन्तु यह ऐतिहासिक सत्य है कि हिन्दी स्वतन्त्र भारत में कई क्षेत्रों में उर्दू की उत्तराधिकारिणी है। अंग्रेजों के आने से पूर्व शासन की भाषा उर्दू थी। अंग्रेजी शासन में भी यह एक प्रादेशिक सरकारी भाषा के तौर पर हिन्दी प्रदेश में प्रचलित रही। स्वतंत्रतापूर्व भारत में उर्दू की वहां प्रमुखता थी। और स्वतंत्र भारत में हिन्दी प्रमुख हो रही है।

इसके साथ एक और बात जुड़ी हुई है—वह यह कि हिन्दी हिन्दुओं की भाषा है और उर्दू मुसलमानों की। मान भी लिया जाय कि भाषाएं एक हैं, किन्तु दोनों धर्म अलग हैं। और धर्म के कारण ही शायद दोनों भाषाओं में असमान प्रभाव आये हैं। फलतः दोनों भाषाएं अलग-अलग लिपियों के साथ पृथक पटरियों पर चली हैं, और आज स्थिति यह है कि वे अलग भाषाएं हैं क्योंकि उनके लिए अलग-अलग आन्दोलन चलते हैं।

राष्ट्रीय आन्दोलन सभी धर्मावलम्बियों का था, और भारत के दो मुख्य धर्मावलम्बी थे हिन्दू और मुसलमान। राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए साम्प्रदायिक एकता आवश्यक थी, इसके साथ इसलिए यह भी आवश्यक हो गया कि दोनों भाषाओं की एक मिली-जुली भाषा हो, जो राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रोत्साहित करे, यही भाषा थी हिन्दुस्तानी, जिसके प्रचार और स्वीकरण

के लिए महात्मा गांधीजी ने आजीवन प्रयत्न किया। उन्हीं के प्रयत्न का परिणाम है कि आज भी प्रांतीयता के बढ़ते पूर्वाग्रहों के बावजूद हिन्दी के लिए इतनी व्यापक सदाशयता है।

अंग्रेजी का प्रचार शिक्षा के द्वारा शिक्षणालयों में हुआ, खेत-खलिहानों में नहीं, बाजार हाट में नहीं। इसलिए इसका प्रचार शिक्षितों तक सीमित रहा। चूंकि शिक्षा का प्रचार सीमित था, इसलिए अंग्रेजी का प्रचार भी हर कोशिश के बावजूद, सीमित रहा। यह भी स्पष्ट है कि अंग्रेजी हर शिक्षित भारतीय के लिए एक अतिरिक्त भाषा ही थी; भले ही इसने हर भाषा को प्रभावित किया हो।

फौज वगैरह में, जिसमें अर्धशिक्षित लोग ही अधिक थे, और सेना की भरती उत्तर भारत में ही अधिक होती थी, और उसमें सभी धर्मावलम्बी थे, अतः अंग्रेजों के लिए अनिवार्य हो गया कि वे मिली-जुली भाषा को, हिन्दुस्तानी को प्रोत्साहित करें। इस प्रकार प्रान्तीय सीमाओं से परे, इस भाषा का प्रचलन बढ़ा।

हिन्दी को, फिल्म आदि के लोकप्रिय होने से पूर्व व्यापारी समाज ने भी बहुत समर्थन दिया था, और आज भी दे रहा है। यह व्यापारी समाज प्रधानतः एकभाषी था, इसकी भाषा थी या तो राजस्थानी, नहीं तो हिन्दी। जहां-जहां वे भारत में गये, और वे कहां नहीं गये, अपने साथ हिन्दी भी लेते गये।

शायद ही कोई भाषा हो भारत में जिसको इतना अधिक राजनैतिक, राष्ट्रीय और धार्मिक समर्थन मिला हो जितना कि हिन्दी को। भारत में धार्मिक और राजनैतिक आन्दोलन प्रायः अन्तर्प्रान्तीय हो जाते हैं। आर्यसमाज, जो उत्तर में काफी क्रान्तिकारी आन्दोलन रहा, हिन्दी का बड़ा शक्तिशाली समर्थक था। इस आन्दोलन के प्रणेता महर्षि दयानन्द गुजराती-भाषी थे। गांधीजी गुजरातीभाषी थे। इन दोनों महान नेताओं ने हिन्दी को एक सर्वप्रान्तीय महत्ता दी, सर्वभारतीय समर्थन दिया। इनके प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हिन्दी के लिए जितना अनुकूल वातावरण बना शायद उनके बाद कोई और नेता न बना सका। इन दोनों के आन्दोलन अन्तर्प्रान्तीय थे, और राष्ट्रीय थे।

स्वतन्त्र भारत में कोई और भाषा न थी, जिसके साथ इतनी कम प्रांतीयता जुड़ी हुई हो जितनी कि हिन्दी के साथ। हिन्दी किसी प्रान्त की उस तरह भाषा न थी, जिस तरह तेलुगु, तेलुगु प्रदेश की है। यह कई ऐसे प्रान्तों की भाषा है, जहां और भाषाएं भी जन-जीवन में प्रचलित हैं भले ही उनका हिन्दी से घनिष्ठ सम्बन्ध हो, पर सत्य यह है कि उनका अलग भी अस्तित्व है, और उनका अस्तित्व हिन्दी से कहीं अधिक प्राचीन है, लिपि भले ही नागरी रही हो।

चूंकि हिन्दी किसी प्रान्तविशेष की भाषा न थी, इसलिए यह आसानी से एक ऐतिहासिक प्रक्रिया में अन्तर्प्रान्तीय, सर्वभारतीय भाषा बन सकती थी। यदि राजभाषा का प्रश्न इतना उलझ गया है तो इसका मुख्य कारण यह भी है कि हिन्दी प्रान्त, हिन्दी की प्रांतीयता को उभार रहे हैं। इस तरह इसका कुछ हद तक सर्वभारतीय आकर्षण कम हो रहा है। यह एक स्वाभाविक परिणाम है। क्या हिन्दी के दो रूप सम्भव हैं? एक प्रान्तीय और दूसरा अन्तर्प्रान्तीय? यदि सम्भव भी हों तो क्या इनका विकास वांछनीय है?

हिन्दी एक लिखित भाषा है। नागरिक भाषा है। इसका लिखित रूप सर्वत्र एक-सा है। यह बहुत सीमित जनसमुदाय की मातृभाषा है। इस प्रकार, दूसरे शब्दों में, इस पर बहुत कम लोगों का स्वत्व है। और जिस पर किसी का विशेष स्वत्व नहीं होता, उसको हर कोई अपना सकता है और अपनी मान सकता है।

हिन्दी भाषा को प्रारम्भ से अनुकूल परिस्थितियां ही नहीं मिलीं, बल्कि यही एक भारतीय भाषा है, जिसका सबसे अधिक प्रचार और प्रसार होता रहा है। यह प्रचार इसलिए अधिक विस्तृत हो सका, चूंकि हिन्दी कई भाषाओं की लिखित रूप ही नहीं, परिष्कृत रूप भी है। जबकि बोलचाल की भाषाएं बिना शिक्षणालयों के भी सीखी जाती हैं, और सीखी जाती रही हैं, हिन्दी जैसी भाषा सिखाई ही जाती है। शिक्षणालयों में, और शिक्षा के पाठ्य-क्रम में सदा से भाषा के शिक्षण पर ही अधिक बल रहा है। प्रकट है कि हिन्दी का प्रचार बढ़ता गया।

उर्दू और फारसी शब्दों के बावजूद, हिन्दी संस्कृत कुल की भाषा है, और तमिल के अतिरिक्त सभी भारतीय भाषाएं संस्कृतजन्य हैं। उनमें समान संस्कृत शब्दावली है। और वे करीब-करीब समानार्थी हैं। इस कारण हर भारतीय भाषा के समीप हैं। यह सरलता से शिक्षणीय भी हैं। हिन्दी भाषा का अतिरिक्त ज्ञान जिस आसानी से सम्भव है, उतना और भाषाओं का नहीं है।

हिन्दी को, अपभ्रंश साहित्य के सहारे बहुत प्राचीन बनाने का प्रयत्न किया जाता है। यह प्रयत्न मुझे कदाचित उतना उचित नहीं मालूम होता। हम खड़ी बोली को वर्तमान हिन्दी मानते हैं। और खड़ी बोली का इतिहास भी भारतेन्दु से ही शुरू होता है यानि सौ सवा सौ वर्ष पहले। इसको प्राचीन बनाने में लाभ हो या न हो, किन्तु इसको अर्वाचीन बनाने में लाभ अधिक हैं। प्राचीन भाषाओं के साथ बहुत-सी परम्पराएं जुड़ी रहती हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य में बहुत कुछ ऐसे सामाजिक प्रभाव हैं, जो आज के समाज में कुछ विसंगतिपूर्ण प्रतीत होते हैं। प्राचीन भाषाओं का साहित्य प्रायः अतीतोन्मुख रहता है। हिन्दी इस दुर्बलता से मुक्त है।

इसके साहित्य में, अर्वाचीन होने के कारण, जितना युगबोध है, कदाचित ही भारत की किसी अन्य भाषा में हो। प्राचीन न होना हिन्दी की न्यूनता नहीं है, अपितु इसकी विशेषता है। और इस कारण अन्य भाषाभाषियों के लिए इसका कुछ अधिक आकर्षण है।

भाषा जितनी प्राचीन होती है, उतने ही उसके साथ पूर्वाग्रह होते हैं। होने को तो ये पूर्वाग्रह हिन्दी के साथ भी हैं, पर निश्चय ही यह और भाषाओं से कम हैं। हिन्दी में जितनी संख्या में हिन्दीतर लिखते हैं किसी और भाषा में और अन्य भाषाभाषी नहीं लिखते हैं। भले ही इस तरह के लेखकों को समकालीन प्रादेशिक हिन्दी साहित्य में उचित स्थान मिलता हो या न मिलता हो। क्या यह संख्या उतनी बढ़ रही है जितनी कि बढ़नी चाहिए ? शायद नहीं।

इस तरह सहायक नदियों के रूप में जितना और भाषाओं का साहित्य हिन्दी में आता है और किसी भाषा में नहीं। हिन्दी का साहित्य, लेखकों की दृष्टि से भी सामाजिक है। हिन्दी में जिस प्रचुर मात्रा में और भाषाओं के अनुवाद होते हैं और किसी भाषा में नहीं हुए हैं। यह ही एक ऐसी भारतीय भाषा है, जो भारतीय साहित्य का भी और भाषाओं से अधिक प्रति-निधित्व करती है, अतः यह साहित्यिक स्तर पर, और भाषाओं की अपेक्षा प्रादेशिकता से अधिक ऊपर है। आवश्यकता है कि इसको और ऊपर उठाया जाय।

सम्पर्क भाषा कहा जाये, या अन्तर्प्रादेशिक भाषा कहा जाये, यह भारत के बहुत बड़े जन-समुदाय की अतिरिक्त भाषा है। यह अंग्रेजीदां लोगों की भी अतिरिक्त भाषा है। भारतीय भाषाभाषियों के लिए तो है ही। इस प्रकार यह एक सशक्त समन्वय सूत्र का काम करती है।

हिन्दी कुछ ऐतिहासिक कारणों से उर्दू के अधिक समीप थी। उर्दू से ही प्रायः अधिकतर इसकी शब्दावली आती थी, चूंकि हिन्दी भी उसी प्रदेश में अधिक प्रचलित थी, जहां उर्दू थी।

यह स्वाभाविक भी था। लेकिन अब परिस्थितियां बदल रही हैं। हिन्दी प्रदेश में भी आज उर्दू उतनी प्रचलित नहीं है। वहां संस्कृत शिक्षाक्रम में अनिवार्य विषय है, और हिन्दी के माध्यम से शिक्षा दी जा रही है। साक्षरता का अभियान हिन्दी के आधार पर ही ज्यादा चल रहा है। इनका भाषा के निर्माण और विकास पर प्रभाव आना अपरिहार्य है, और वर्तमान परिस्थितियों में वांछनीय भी।

हिन्दी बहुत लम्बे समय तक उर्दू-फारसी भाषा के बहुत-से शब्द अपनाती रही, पचाती रही। यदि उर्दू अब नागरी लिपि अपनाले तो उत्तर भारतीय भाषाई वैमनस्य बहुत कुछ खत्म हो जाये, और यह भी सार्थक हो जाये, जैसा कि कहा जाता है कि दोनों भाषाएं एक हैं। इससे कहना न होगा, हिन्दी को अन्तर्प्रान्तीय भाषा के रूप में अपने ही प्रदेश में सबल और सुदृढ़ आधार मिलेगा।

अब हिन्दी का सम्बन्ध इसके समीपवर्ती भाषाओं से अधिक है, जो उर्दू से दूर हैं, हिन्दी के समीप हैं। उनमें एक आंगिक सम्बन्ध है। अतः उन भाषाओं द्वारा हिन्दी का प्रभावित होना अनिवार्य है। अब हिन्दी की कथित सरलता इसमें नहीं है कि उर्दू के शब्द हिन्दी में अन्धाधुन्ध घुसेड़े जायें, किन्तु सरलता इसमें है कि उसमें प्रादेशिक समानार्थी शब्द आयें, और प्रायः ये शब्द संस्कृत के ही होते हैं। और एक प्राकृतिक प्रक्रिया से तद्‌भव शब्द भी आये।

हिन्दी का नया शब्द भांडार संस्कृत से ही आयेगा क्योंकि सभी भारतीय भाषाओं का शब्द-स्रोत मुख्यतः संस्कृत ही रहा है, और है। हिन्दी का संस्कृतबहुल हो जाना एक स्वाभाविक प्रक्रिया का वांछित परिणाम है। इस प्रक्रिया के कारण हिन्दी और भारतीय भाषाओं के अधिक समीप आती है, जबकि उर्दू-मिश्रित और उर्दू-प्रभावित होने के कारण यह पहले उनसे दूर हो गयी थी। भारतीय भाषाओं के सम्मिलन की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करना मेरी दृष्टि में राष्ट्रीय कर्त्तव्य है।

जब से भाषावार प्रान्त बने हैं, भाषा-कट्टरता या अतिरंजित भाषा-निष्ठा बहुत बढ़ गयी है। यह भी देखा जाता है कि स्वभाषा प्रेम कभी-कभी अन्य भाषा के बहिष्कार में भी व्यक्त हुआ है। यह प्रवृत्ति हिन्दी प्रान्त में हिन्दी के बारे में भी देखी गयी है। यह अस्वस्थ ही नहीं देश के हित में भी नहीं है।

हिन्दी प्रान्तीयता में उलझकर कुछ हद तक अपना अन्तर्प्रादेशीय महत्त्व खो रही है। हिन्दी का जो भी प्रान्तीय रूप है, और अपभ्रंश भाषाओं के मिश्रण से, इसका प्रान्तीय रूप भी है, अन्तर्प्रान्तीय भाषा है। और वह लिखित होकर एक रूप है। संस्कृतजन्य भाषाओं से अंतरंग सम्बन्ध बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि यह प्रधानतः संस्कृतबहुल हो।

हिन्दी, हिन्दी प्रान्तों की ही भाषा नहीं है, यह भारत की सर्वाधिक अध्यापित भाषा होने के कारण सर्वत्र प्रचलित है और प्रायः सभी प्रान्तों में यह शिक्षाक्रम का विषय भी है। स्वत्व की भावना के आपेक्षिक अभाव ने ही एक बहुभाषीय समाज में हिन्दी को सभी प्रान्तों में स्वागत योग्य बनाया था। प्रान्तीयता ने इस स्वत्व की भावना को उभारा है, जो मैं समझता हूं, हिन्दी के भविष्य के लिए लाभप्रद नहीं है।

यह प्रान्तीयता की जकड़ से तभी कुछ मुक्त होगी जबकि इसके साहित्य-निर्माण में सभी भारतवासियों का योगदान रहेगा, सभी भाषाभाषियों का सहयोग रहेगा और हिन्दी-भाषियों को यह जानना होगा कि किसी भी भाषा पर, किसी एक प्रान्त का एकाधिकार नहीं होता है। भारत की राजभाषा होने के नाते, सम्पर्क भाषा होने के नाते, अन्तर्प्रादेशिक भाषा होने के नाते, अतिरिक्त भाषा होने के नाते, यह सर्वभारतीय भाषा है, और हर भारतीय को

इसमें लिखने-पढ़ने का अधिकार है। यह किसी प्रान्त विशेष की भाषा नहीं है, इस कारण इसको प्रान्तीयता की चौखट में फांस देना मूर्खता है।

हिन्दी-आन्दोलन में दुर्भाग्यवश हिन्दी की प्रान्तीयता रेखांकित हुई है। यह योजनाबद्ध रूप से हुआ अथवा आकस्मिक रूप से यह निश्चय करना कठिन है। जो भी हो, इससे और भाषा प्रान्तों में इसका विरोध हुआ और यह ही इसकी राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने में अवरोध भी बना।

भाषा जहां समुदाय को सांस्कृतिक अस्मिता देकर पार्थक्य का साधन बनती है, वहां एक बहुभाषीय समाज में जिसकी संस्कृति मुख्यतः धर्म-आधारित और धर्म-अनुशासित है, समन्वय का भी साधन है। सारा भारतीय समाज एक है, इसकी संस्कृति मोटे तौर पर एक है। और भिन्न-भिन्न भाषाओं के होते हुए भी साहित्य एक है। हिन्दी एक ऐसी सक्षम भाषा है जो समन्वय का साधन बन सकती है। इसकी शब्दावली में जितने और भाषाओं के शब्द हैं, भारत की किसी और भाषा में नहीं हैं। इसमें दूसरी भाषाओं को आत्मसात् करने की असाधारण शक्ति है।

बहुभाषीय देश में वही भाषा सबके लिए स्वीकार्य हो सकती है जो और भाषाओं के अधिकाधिक समीप हो और जो अन्योन्याश्रित रूप से आधारित हो। मानना पड़ेगा, इस कसौटी पर, हिन्दी को वह स्थान प्राप्त है जो और भाषाओं को सहज प्राप्त नहीं है।

अन्त में मैं यह कहना चाहूंगा कि भारत में हम भाषाओं को आवश्यकता से अधिक तूल दे रहे हैं। भाषावार प्रान्तों में हर भाषा प्रान्तीयता की आक्रामक कट्टर भावनाओं से ग्रस्त होकर कुछ-कुछ संकुचित दृष्टिकोण का शिकार हो रही है। भाषा, यह देखा जा रहा है, अब एकता का साधन न होकर कुछ भेद का कारण बन रही है। यह दुर्भाग्यपूर्ण और शोचनीय है। यदि हम भाषा को आवश्यकता से अधिक बल न देते तो शायद यह दुःस्थिति न होती।

बहुभाषीय देश में हर भाषा का अपना स्थान है। पर वर्तमान शिक्षित॰ प्रगतिशील समाज में भाषागत धर्मगत मूल्य कम और शिथिल होते जा रहे हैं। बढ़ती हुई राजनैतिक और आर्थिक पृष्ठभूमि में देश की एकता के लिए भाषाबल की अब उतनी आवश्यकता नहीं अनुभव की जा रही है। अब नये मूल्य पनप रहे हैं, आधुनिक जीवन में नयी चुनौतियां उठ रही हैं, व्यक्ति और समिष्ट के सम्बन्धों में परिवर्तन आ रहे हैं। एक ऐसे समाज का विकास हो रहा है जिसमें भाषागत निष्ठा कदाचित् गौण हो रही है। फिर भी यह अभीष्ट है कि भाषा-आधारित, भिन्न-भिन्न भाषी प्रान्तों की एक अन्तर्भाषा हो और हमारे लोकतन्त्र में सम्प्रति यह भाषा हिन्दी ही है। □

दोजख की भाषा

सरदार जाफरी ने एक दिन राजेन्द्रसिंह बेदी से कहा, "बेदी साहब, सुना है, दोजख की जबान पंजाबी है।"

बेदी ने इस पर कहा, "अगर यह बात ठीक है, तो आपको भी पंजाबी सीखनी पड़ेगी।"

श्रद्धा ही जीवन का आधार बने

घनश्यामदास बिड़ला

□□

सर्वत: पाणिपादम् सर्वतोक्षि शिरोमुखम् ।

"सब जगह हाथ और पांव, सब जगह आंखें, सिर और मुख है" उस भगवान् का । हजारों हाथ, हजारों कान बिराट स्वरूप के बताये गये हैं । इस तरह हम जब जनसमूह को देखते हैं तो मेरे अन्तर में यही कल्पना होती है कि यह सब जो यहां उपस्थित हैं, वे भगवान् के ही अवतार हैं और जब मैं इन सबको नमस्कार करता हूं तो प्रकारांतर से मैं भगवान् को ही नमस्कार करता हूं ।

पांच साल पहले जब मैं यहां आपके सामने उपस्थित हुआ तो मैंने उपाध्यायजी से प्रार्थना की थी कि रामायण के जो महान् पात्र हैं उनकी चरितावलि लिखिये । मेरी प्रार्थना को स्वीकार करके उन्होंने 'मानस चरितावलि' नाम से ग्रंथ प्रकाशित किया । उसको पढ़ने से, मनन करने से, उन पात्रों का अनुकरण करने से आप सबका कल्याण होगा । इसलिए मैं आशा करता हूं कि आप सब उसे पढ़ेंगे ।

पांच साल पहले मैं आया था और पांच साल के बाद अब फिर आ रहा हूं । इन पांच सालों में मेरा बुढ़ापा बढ़ा, सन्तों का आशीर्वाद बढ़ा और स्वजनों का प्रेम भी बढ़ा । इसलिए फिर से मुझे निमंत्रण दिया गया और मैंने सहर्ष स्वीकार किया । क्योंकि पंडितजी को धन्यवाद देना यह एक मधुर कार्य है । इसमें मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है । स्वीकारोक्ति का यही मूल हेतु है ।

दो महीने पहले पण्डितजी का प्रवचन कलकत्ते में हुआ था तो उसके समारम्भ का कार्य भी मुझे ही सौंपा गया था । उस समय मैंने जनता के जो आगन्तुक सज्जन और देवियां वहां बैठी थीं, उनसे कहा था कि मानस की हर चौपाई पर अगर कोई शंका करना चाहे तो तरह-तरह की शंकाएं कर सकता है । वह पूछ सकता है कि भगवान् जब विष्णु के साक्षात् अवतार थे तो उनको लंका तक जाकर रावण को मारने के लिए बन्दरों की फौज ले जाने की क्या आवश्यकता थी ? वे तो वहीं बैठे-बैठे ही रावण को भस्म कर सकते थे । क्यों सेतु बनाया ? क्यों रावण सीता को हरकर ले गया ? उन्हें पहले से ही पता था कि ऐसा होगा । उसे रोक सकते थे ।

इस तरह की आजकल के आधुनिक लोग शंका उठा लेते हैं किन्तु यह शंका हानिकारक है—'संशयात्मा विनश्यति' । राम की भक्ति यह श्रद्धा का विषय है । तर्क को इसमें कोई स्थान नहीं है । हमारी बोलचाल की भाषा में भी कहा है कि 'हजारों पण्डित, लाखों सयाने, खुदा की बातें खुदा ही जाने ।' बात यह कि भगवान् की लीला भगवान् ही जानता है, इसलिए इसमें शंका अप्रस्तुत है । इसलिए अगर भक्ति करना हो, राम की पूजा करना हो तो हमें शंका छोड़कर ही भगवान् की पूजा करनी चाहिए । दूसरा कोई रास्ता है ही नहीं ।

वैज्ञानिक युग में इस तरह की शंका उठाई जाती है पर मैं यह बताना चाहता था कि हर एक वस्तु बुद्धिगम्य नहीं है। आंखों से हम देख सकते हैं किन्तु आंख की शक्ति क्या है? थोड़ी दूर की चीज ही देख सकते हैं, उसके आगे हम नहीं देख सकते। अगर अन्धकार हो तो नजदीक की चीज भी हम नहीं देख सकते। कान से भी हमको सुनाई एक हद तक ही देता है। नाक में जो गंध आती है वह भी एक सीमा तक ही आती है। तो आगे जाकर एक सीमा ऐसी भी आती है जिसके आगे बुद्धि भी काम नहीं करती। बुद्धि की भी मर्यादा है। स्वयं बुद्धि भी आगे चलकर यही कहती है कि भई, अब मेरे बस की बात नहीं है। अब तुम श्रद्धा के बल पर चलो।

वटवृक्ष का छोटा-सा बीज होता है, उसमें से एक बड़ा विशाल वृक्ष निकलता है। सुबह सूर्य समय पर उदय होता है। चन्द्रमा अपनी परिधि में घूमता है, तारागण भी इसी मर्यादा में चलते हैं। आप लोग पूछ सकते हैं कि ऐसा क्यों होता है, किन्तु क्यों ऐसा होता है यह कोई बता नहीं सकता। हम जानते हैं कि कल सूर्य उदय होगा लेकिन सूर्य उदय होगा यह भी एक श्रद्धा की ही बात है, क्योंकि हमने सुन रखा है, जान रखा है, मान रखा है। तो इसी तरह से मैं यह बताना चाहता था कि जब हम श्रद्धा करते हैं तो इसके माने यह नहीं कि बुद्धि को ताक पर रख देते हैं। किन्तु जब बुद्धि चलती नहीं है तब बुद्धि स्वयं ही हमें कहती है कि भई, अब तुम श्रद्धा से काम लो।

आपको अगर बम्बई जाना है तो आप मोटर से नहीं जायेंगे, मोटर स्वयं कह देगी आपको कि यदि बम्बई दो घंटे में पहुंचना है तो आप एयरोप्लेन से जाइये। इसलिए जब हम श्रद्धा की बात करते हैं तो यह बुद्धि की अवहेलना नहीं है। इस बुद्धि से ही हम श्रद्धा करना सीखते हैं ऐसा मानना चाहिए। इस सम्बन्ध में गीता में यह कहा है कि 'श्रद्धामयो अयंपुरुषः यो यत्श्रद्धः सः एवसः' जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वह मनुष्य वैसा ही बन जाता है।

गीता के अनुसार—श्रद्धा सात्विकी भी होती है, राजसी भी होती है और तामसी भी होती है। मनुष्य का जैसा स्वभाव है वैसी ही उसकी श्रद्धा होती है। अब जो भगवान् की भक्ति करता है उसकी श्रद्धा सात्विकी होती है, जो अपने बल का घमण्ड रखकर कार्य करता है उसकी बुद्धि राक्षसी होती है, जो इन्द्रियों में लोलुप है उसकी श्रद्धा तामसी होती है।

हमारे कविवर रवि ठाकुर ने श्रद्धा की व्याख्या करते हुए कहा कि श्रद्धा एक उस पक्षी का नाम है जो मध्य रात्रि के प्रगाढ़ अन्धकार में भी सूर्य का गान गाता है। क्योंकि सूर्य दिखाई तो देता नहीं रात को लेकिन श्रद्धा के बल पर वह जानता है कि सुबह होगी और सूर्य उदय होगा। इसलिए वह सूर्य का गान करता है। आदि शंकराचार्य ने भी श्रद्धा की जो व्याख्या की है उसमें यह कहा है कि शास्त्रों के और आप्त पुरुषों के जो वचन हैं उनको मानना यह यह श्रद्धा है।

हम जब पुगर्जन्म की बात करते हैं तो पुनर्जन्म होगा यह किसने देखा है? भगवान् को किसने देखा है? तो हम फिर भी क्यों मानते हैं कि भगवान् है और पुनर्जन्म होगा? क्योंकि हमारे शास्त्रों ने कहा है, हमारे महापुरुषों ने कहा है, सन्तों ने कहा है इसलिए श्रद्धा से हम इस तथ्य को स्वीकार करते हैं।

मैंने एक मर्तबा महात्मा गांधीजी से कहा कि बापू, आप कहते हो कि पुनर्जन्म होगा, इसका प्रमाण क्या है? तो उन्होंने कहा कि होता है, पुनर्जन्म होता है। इसका प्रमाण क्या है? उन्होंने कहा कि अरे, प्रमाण क्या, किस-किस चीज का तुम प्रमाण पूछोगे, प्रमाण कोई हो सकता है! एक सन्त के सामने जब मैंने इसी तरह की आपत्ति उठाई तो उन्होंने बड़े प्रेम से, बड़ी नम्रता से कहा, भाई, प्रमाण तो नहीं है, किन्तु महापुरुषों ने कहा है अनुभव से उसे मानना तो

चाहिए न ! यह बात सही है। मैंने इसे स्वीकार कर लिया।

यदि नहीं मानोगे तो क्या करोगे ? अखबार में पढ़ा कि कल भुट्टो को फांसी की सजा हुई। क्या आपने देखा भुट्टो की फांसी ? लेकिन अखबार में लिखा है तो आप श्रद्धा से मानते हो कि जो लिखा है वह सही है। कल कहो एक लड़ाई शुरू हो गयी मिडिल ईस्ट में किन्तु आपने जाकर तो देखा नहीं। यह भी अखबार की खबर में विश्वास करके ही आप मान लेते हो। इस तरह हमारा जीवन केवल बुद्धि के बल पर नहीं पर श्रद्धा के बल पर चलता है।

तो मैं यह कहना चाहता हूं कि इस तरह का तर्क-वितर्क, संकल्प-विकल्प वह आत्म-कल्याण के लिए घातक है। अगर भक्ति करनी है—तो फिर एक हद के बाद तर्क-वितर्क को छोड़कर श्रद्धा की शरण में जाना चाहिए। इसके माने यह नहीं हैं कि हम बुद्धि की अवहेलना कर दें। पर बुद्धि स्वयं हमें श्रद्धा की ओर ढकेलती है तो श्रद्धा, सात्विकी श्रद्धा के बल पर आप भगवान् का ध्यान करें तो कल्याण होगा।

लेकिन जैसा मैंने कहा कि श्रद्धा की परिभाषा कठिन है वैसे ही भक्ति की परिभाषा भी कठिन है। भक्ति क्या है ? सुबह गंगास्नान करके भगवान की पूजा करते हो, मन्दिर में जाते हो, पुष्प और जल चढ़ाते हो, यह ठीक है। किन्तु इतने मात्र से भक्ति का दायरा समाप्त नहीं होता। इससे कुछ और आगे बढ़ना है। इसका विस्तार आवश्यक है।

स्वर-व्यंजन स्कूल में जब आप पढ़ते हो तो उन स्वर-व्यंजनों के अध्ययन की अवश्य आवश्यकता है। नहीं तो वेद और शास्त्र कैसे पढ़ोगे ? किन्तु स्वर-व्यंजन पढ़ने-मात्र से वेद और शास्त्र नहीं पढ़ सकते। इसके आगे चलना पड़ता है। अगर कोई कहे कि मुझे हलवा बनाना है तो केवल आटे के बल पर हलवा नहीं बनता, केवल घी के बल पर भी हलवा नहीं बनता। हलवा बनाने के लिए आटा चाहिए, घी चाहिए, चीनी चाहिए, बनानेवाला चाहिए, चूल्हा चाहिए, बहुत-सी सामग्रियां चाहिए। तब हलवा बनता है।

इसी तरह भगवान् ने भक्ति के भी शास्त्रों में विस्तारपूर्वक लक्षण बताये हैं वे सब महत्त्वपूर्ण हैं। नाम-स्मरण का माहात्म्य है। गीता में भी कहा है कि 'यज्ञानां जप यज्ञोस्मि' जप करना यज्ञों में सबसे बड़ा यज्ञ है। लेकिन इसकी भी सीमा समझनी चाहिए, केवल इतने मात्र से काम नहीं चलता, उसके बहुत आगे चलना है। इसी प्रश्न को कबीर ने समझाया है। कबीर भी भगवान् का भक्त था, उसने कहा :

पावक कह्या पांव जो दाझै जल कहि तृषा बुझाइ।

अग्नि कहनेमात्र से आपका पांव नहीं जल जाता या पानी का नाम लेनेमात्र से आपकी तृष्णा नहीं बुझती :

भोजन कह्या भूख जो भाजे,

भोजन कहनेमात्र से आपकी भूख नहीं चली जाती,

तो सब कोई तरि जाइ ॥

किन्तु यह कबीर की वाणी नाम-स्मरण के माहात्म्य का खण्डन नहीं करती है क्योंकि कबीर फिर आगे कहता है :

कहे कबीर प्रेम नहीं उपज्यो बांध्यो जमपुर जासी।

उनके साथ में प्रेम होना चाहिए। तो भक्ति की परिभाषा भी कठिन है। इस भक्ति का गीता के बारहवें अध्याय में बड़े विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है आप लोग उसे पढ़ जाइये। उदाहरण के लिए एक श्लोक है :

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।

'अनपेक्षः' किसी चीज की इच्छा नहीं करता, 'शुचि' पवित्र रहता है, 'दक्ष' चतुर, 'उदासीन' किसी चीज की लालसा नहीं रखता, ऐसे-ऐसे पैंतीस-छत्तीस गुण गीता के बारहवें अध्याय में भक्त के लक्षणों में शुमार किये गये हैं।

तो मेरा कहना यह है कि केवल मात्र राम-राम करने से ही भक्ति समाप्त नहीं होती। किन्तु यह मात्र प्रथम साधन है, वह सीढ़ी है, स्वर-व्यंजन है, लेकिन उसके आगे चलना है। तो गीता के बारहवें अध्याय में बहुत विस्तारपूर्वक भक्त का वर्णन किया है। उसको ध्यान में रखकर भगवान् का स्मरण करना चाहिए और भक्ति करनी चाहिए। क्योंकि जहां स्मरण— नाम-स्मरण के माहात्म्य का वर्णन किया गया वहां यह भी कहा गया है कि उसके अर्थ की भी भावना करनी चाहिए। राम क्या है, उसका अवतार क्या है ! उसका भी मनन करना चाहिए।

जब राम वन में जाते हैं तो वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में जाते हैं। तो वे वाल्मीकिजी से पूछते हैं कि भगवन्, अब मैं वनवासी होकर आया हूं, कौन-सा ऐसा स्थान है कि जहां मैं सुखपूर्वक अपने चौदह साल व्यतीत कर सकूं ? तो वाल्मीकिजी को पहले तो आश्चर्य हुआ और उन्होंने कहा कि आप मुझसे क्या पूछते हैं, आप तो सब जानते हैं कि कौन-सी जगह जाना चाहिए लेकिन आपने मुझसे पूछा तो मैं आप को बताता हूं।

अब वह जो रामायण में वर्णन है उसे आपको हृदय में धारण करना चाहिए। क्या कहा उन्होंने ? कहां रहूं तो उन्होंने कहा :

काम क्रोध मद मान न मोहा ।
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ।।
जिन्हकें कपट दंभ नहिं माया ।
तिन्हकें हृदय बसहु रघुराया ।।

यह स्थान है आपके रहने का। यानी चित्रकूट वगैरह सब ठीक है किन्तु जिनको काम नहीं है, जिनको क्रोध नहीं है, जिनको मद नहीं है, जिनको मान नहीं है, जिनका मोह चला गया, जिनको लोभ नहीं है, क्षोभ नहीं है, न राग है न द्रोह है, ऐसे जो लोग हैं, हे भगवन्, उनके मन के भीतर आप बसो। इसका मतलब यह हुआ कि भक्त कौन है— भक्त वह है जिसके हृदय के भीतर भगवान् जाकर निवास करते हैं और वे कहते हैं :

जिन्हकें कपट दंभ नहिं माया ।
तिन्हकें हृदय बसहु रघुराया ।।
सबके प्रिय सबके हितकारी ।
दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी ।।

जिनको प्रशंसा और गाली समान हैं।

कहहि सत्य प्रिय बचन बिचारी ।

जो सत्य वचन बोलते हैं, कभी झूठ नहीं बोलते।

जागत सोवत सरन तुम्हारी ।।

खाली नाम लेकर नहीं, अपनी आत्मा को, अपने कर्मों को, जागते हों या सोते हों सबको भगवान् के अर्पण कर देते हैं।

जागत सोवत सरन तुम्हारी ।।
तुम्हहिं छाड़ि गति दूसरि नाहीं ।

तुम्हें छोड़कर जो समझते हैं कि दूसरी गति नहीं है।

राम बसहु तिन्हकें मन माहीं ।।

यह देखिए, यह बहुत भावप्रद चीज है, खाली पढ़नेमात्र से नहीं लेकिन इनको बार-बार पाठ करने की चीज है :

जननी सम जानहिं पर नारी ।
धन पराय बिष तें बिष भारी ।।
जे हरषहिं पर संपति देखी ।

दूसरे की सम्पत्ति देखकर प्रसन्न होते हैं ।

दुखित होंहि पर बिपति बिसेषी ।।

दूसरे को कष्ट में देखकर दुखते हैं ।

जिन्हहि राम तुम प्रान पिआरे ।
तिन्हके मन सुभ सदन तुम्हारे ।।

तुम्हारा घर वह है । अब समझ लीजिए भक्ति क्या है । इसमें सभी चीजें आ गयीं ।

स्वामी सखा पितु मात गुर जिन्हके सब तुम्ह तात ।
मन मंदिर तिन्हकें बसहु सीय सहित दोऊ भ्रात ।।

सीय-समेत दोनों भाई उनके घर में जाकर बसो । अब आप देखिए, गीता का बारहवां अध्याय पढ़ जाइए और ये मानस में तुलसीदासजी ने वाल्मीकि के मुंह से जो कहलवाया है वह सब पढ़ जाइए । तो दोनों एक ही चीज हैं, इसमें कोई फर्क नहीं है ।

भक्ति और कर्म दो अलग-अलग चीजें नहीं हैं । गीता में कहा कि 'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य' अपने कर्मों के द्वारा जो कर्म भगवान् ने नियत किये हैं, उनके द्वारा भगवान् की पूजा करो। यही भगवान् के ऊपर और फल और जल चढ़ाते हो वह यह है । श्रद्धा के साथ और भक्ति के साथ स्वकर्म करना चाहिए। भक्ति कर्म के बिना फीकी है और कर्म भक्ति के बिना फीका है । इसलिए गीता में इनका समन्वय किया कि कर्म और भक्ति दोनों से अन्त में ज्ञान प्राप्त होता है । क्योंकि भक्ति के माने हैं गीता में कहा 'सर्वभूत हिते रताः' सब प्राणीमात्र के हित में रत रहना यही स्वकर्म है और यही भक्ति है ।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ।

सारा जो संसार है वह भगवान् का स्थान है । तो संसार की सेवा करते हो, प्राणीमात्र की सेवा करते हो, उनके हित में रत रहते हो तो आप भगवान् की सेवा करते हो।

बोलचाल की भाषा में यह भी कहा है कि 'आदम खुदा नहीं, पर आदम खुदा से जुदा नहीं ।' इन्सान है वही ईश्वर है ।

मैंने प्रारम्भ करने से पहले कहा कि जो जनता-जनार्दन है यह भगवान् का स्वरूप है, क्योंकि भगवान् ने कहा कि 'सर्व भूतस्थितं' सर्व भूतों के हृदय में मैं वास करता हूं। इसका अर्थ यह है कि तमाम प्राणीमात्र, यह सब भगवान् के अवतार ही हैं, इनके हित में जब आप रत रहते हो, इनकी सेवा करते हो तो इसका मतलब यह है कि भगवान् की आप सेवा करते हो । इसलिए श्रद्धा के साथ भक्ति करो और भक्ति का अर्थ है स्वकर्म करो, भूतों के हित में रत रहो, प्राणीमात्र की सेवा करो। यही भक्ति है ।

मानस में जो कहा और गीता में जो कहा वह दोनों एक ही अर्थ में हैं । सन्तों ने बड़े-बड़े कठिन विषय जो गीता में प्रतिपादित हैं उनको सन्तों ने अपने भजनों द्वारा बहुत सुगम रीति से समझाया है। कबीरजी ने क्या, तुलसीदासजी ने क्या, सूरदासजी ने क्या, एक ही बात कही है । तो भक्ति श्रद्धा के साथ करो और स्वकर्म करो तो यह समन्वय हो गया। इससे आपका कल्याण होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है ।

हम लोग जब यह कहते हैं कि भले का अन्त भला होता है, जो अच्छा करता है उसको अच्छा फल मिलता है, बुरा करता है उसको बुरा फल मिलता है। यह क्यों ? आप में से कोई नहीं बता सकता कि ऐसा क्यों होता है ? लेकिन यह भगवान् का नियम है। 'स्वभावस्तु प्रवर्तते', यह स्वभाव है भगवान् का कि आप अच्छा करोगे तो उसका फल अच्छा ही होगा, यह श्रद्धा रखिए।

जैसा कि रवि बाबू ने कहा कि रात के प्रगाढ़ अन्धकार में जो पक्षी सूर्य का गान करता है वह श्रद्धा है। सूर्य दिखाई नहीं पड़ता, रात को अन्धकार है किन्तु वह जानता है कि सूर्य उदय होगा। इसी तरह से आप निश्चय रखिए कि आप अच्छा कर्म करते हो तो फल अच्छा होगा। जो मानस में वाल्मीकि के मुंह से तुलसीदासजी ने कहलवाया उसका अनुसरण करते हो तो आप भगवान् की भक्ति करते हो और भगवान् की भक्ति करते हो तो ऐसा समझो कि आपका भला ही होगा।

व्यासजी ने कहा है कि 'धर्मात् अर्थश्चकामश्च' धर्म से अर्थ भी मिलता है, पैसा भी और कामना पूर्ण होती है। ऐसा नहीं है कि धर्म करनेवाले कंगाल रहेंगे, ऐसा कोई उदाहरण भगवान् ने नहीं दिया है। जो भगवान् की भक्ति करता है उसको कभी कष्ट होता ही नहीं, उसकी लालसा पूरी होती ही है। यह दूसरी बात है कि आप छोटी लालसा लेकर जाते हो तो छोटा लाभ होता है और अगर बड़ी लालसा लेकर जाते हो तो बड़ा लाभ होता है।

तो अगर आप प्रेम के साथ, श्रद्धा के साथ अच्छे कर्म करते हो, भगवान् की भक्ति करते हो तो यह आपको उसका फल अवश्य अच्छा मिलेगा, इसमें आप कोई शंका मत कीजिए। यह प्रसिद्ध बात है, अनुभव की बात है, सन्तों ने अनुभव से कहा है, शास्त्रों ने कहा है और इतिहास से भी आप इसी निर्णय पर पहुंचते हैं। □ **(एक अनुभूतिपरक प्रवचन)**

इक्केवान का कापीराइट

लखनऊ गया था। सोचा मित्र से मिलता चलूं। मेरे मित्र चौक में रहते थे।

अमीनाबाद के चौराहे से इक्का किया। घोड़ा ताल्लुकेदार की चाल चल रहा था। मैंने कहा :

"मियां जरा तेज चलो।"

"हुजूर अच्छी नस्ल के घोड़े चाल नहीं बदला करते।"

"अच्छा तो फिर कुछ गप्पें ही सुनाओ।"

"बाबूजी आप लेखक मालूम होते हैं ?"

"क्यों भाई तुम्हें लेखक से क्या शिकायत है ?"

"शिकायत। मत पूछिये। इसी तरह एक बाबू साहब चौक से अमीनाबाद मेरे इक्के से बराबर आया-जाया करते थे। मेरी गप्पें इकट्ठी कर उन्होंने एक बड़ा-सा उपन्यास लिख डाला। अब मैं धोखा नहीं खा सकता। माफ कीजिए। आप कोई दूसरी सवारी कर लीजिए।"

मैं इक्केवान का मुंह ताकता रह गया। वह इक्का लेकर आगे बढ़ गया।

हिन्दी साहित्य के तीन सितारे

अक्षयकुमार जैन

□□

बात जुलाई, 1933 की है।

मैं काशी विश्वविद्यालय का छात्र था। हिन्दी के प्रख्यात कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का नाम सुन रखा था, किन्तु उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। एक दिन उन्हीं के दर्शन करने को चल पड़ा। हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के बाहर सफेद खद्दर की म्लान-सी शेरवानी पाजामा पहने, सिर पर साफा बांधे एक बूढ़ा चूना लगाकर खाने के लिए सुरती बना रहा था। मैंने उसे चपरासी समझकर पहुंचते ही प्रश्न किया, "कमरे में अन्दर कौन-कौन हैं ?" उसने हाथ रोका और ठेठ अवधी में कहा, "केका पूछत हो ?" मेरी जिह्वा पर पहला नाम आया, "हरिऔधजी को।"

बात यह थी कि उनका ग्रंथ 'प्रिय-प्रवास' पाठ्यक्रम में था और कुछ ही दिनों में जब कक्षाएं आरम्भ होनेवाली थीं तो सुना कि स्वयं हरिऔधजी उसे पढ़ायेंगे। शायद इसीलिए हरिऔधजी का नाम सबसे पहले जबान पर आया।

उस व्यक्ति ने सुरती मुंह में डालते हुए कहा, "कहो क्या बात है ?"

बचपन तो था ही और फिर छात्र जीवन, मैंने तपाक् से कहा, "तुम्हें क्या मतलब, मुझे तो हरिऔधजी से मिलना है।"

वह हंस पड़ा। इतने में ही क्या देखता हूं कि बाबू श्यामसुन्दर दास और पं० रामचन्द्र शुक्ल अन्दर से निकले और बोले, "हरिऔधजी, यहां क्या हो रहा है ?"

फिर क्या था मैं, एक क्षण के लिए भी न ठहर सका। मुझे अपनी भूल मालूम हुई और उस भूल का कारण वास्तव में यह था कि मैंने उपाध्यायजी का जो प्रकाशित चित्र देखा था वह उनके वास्तविक चित्र से काफी भिन्न था। कहां वह खसखसी दाढ़ी और कहां वह घुटी हुई। यही कारण था कि मेरा मन उन दोनों में कोई सामंजस्य स्थापित न कर सका।

बनारस में नाम के उलटफेर की एक अजीब-सी परम्परा रही, जैसे सितारे-हिन्द का उलटा भारत-इन्दु। इसी प्रकार अयोध्यासिंह का उलटा एवं छोटा रूप हरिऔध हो गया। यों अयोध्यासिंह उपाध्याय अपने समय में खड़ी बोली के पहले कवि थे जिन्होंने हिन्दी कविता में अतुकांत की परम्परा डाली। यह तो सर्वविदित है कि उनका अकेला काव्य 'प्रिय-प्रवास' उनको अमर रखने के लिए काफी है, पर उनका रूप विविध रहा। जहां वे एक प्रतिष्ठित कवि

वहां शिक्षाविद् और अध्यात्म विद्या के माने हुए पण्डित भी थे। इसके साथ ही उनका जो स्वभाव था उसमें आत्मीयता स्पष्ट झलकती थी।

मालवीयजी हिन्दू विश्वविद्यालय को सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय शिक्षण संस्था बनाना चाहते थे। उन्होंने जहां देश के उच्च कोटि के विद्वानों से परामर्श लिया, वहां यह भी ध्यान रखा कि किसी विषय का पण्डित ऐसा न रहे जो वहां उपलब्ध न हो। हिन्दी के तो मानो महारथी ही एक समय में वहां थे। जिन दिनों मैं वहां का छात्र था, बाबू श्यामसुन्दर दास विभागाध्यक्ष थे और उनके साथ पं० रामचन्द्र शुक्ल, श्री अयोध्यायप्रसाद उपाध्याय, हिन्दी के पहले डाक्टर श्री पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल आदि प्राध्यापक थे। मेरे लिए तो यह परम सौभाग्य की बात थी कि हिन्दी के ऐसे महापण्डितों का सान्निध्य प्राप्त हुआ।

पहले दिन हरिऔधजी को न पहचान पाने के लिए मैं मन ही मन लज्जित तो था ही कुछ पश्चात्ताप भी कर रहा था। और यही कारण था कि कक्षा में मैं उनकी ओर सहज भाव से न देख पाता था। यह संकोच तब टूटा जब एक दिन स्वयं उपाध्यायजी ने ही मेरी भूल की वह घटना सारी क्लास को सुनाकर मुझे उस भार से मुक्त कर दिया। फिर क्या था, काशी के अपने छात्र प्रवास में मैं सदा उनकी कृपा का पात्र रहा और अपने-आपको उनके निकट अमुभव करता रहा।

उस समय 'प्रिय-प्रवास' की लोकप्रियता उसके लालित्य एवं प्रवाह के कारण हर क्षेत्र में बढ़ रही थी। इसलिए स्वाभाविक ही था कि उसके पद विद्यार्थियों की जिह्वा पर होते। सच तो यह है कि उसका प्रारम्भ ही प्रकृति का इतना सुन्दर चित्र प्रस्तुत करता है कि उसे भुलाया नहीं जा सकता, और वह अनायास ही मन और मस्तिष्क पर अपना प्रभाव बिठा लेता है। दिन बीतने को है, आकाश में लाली छा रही है और पेड़ की चोटियों पर सूर्य की किरणें अठखेलियां कर रही हैं, यह सब उसमें है। इसे पढ़ते ही आंखों के सामने सन्ध्या का चित्र उपस्थित हो जाना स्वाभाविक ही है। फिर नंदरानी यशोदा को अपने प्रिय पुत्र श्रीकृष्ण के मथुरा जाने पर जो वियोग है वह वर्णन इतना सुन्दर बन पड़ा है कि पढ़नेवाले पर मां की ममता का प्रभाव बरबस हो जाता है।

विश्वविद्यालय में उन दिनों हरिऔधजी के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की चर्चाएं सुनने में आती थीं। कहा जाता था कि हरिऔधजी ने वर्षों से स्नान नहीं किया। उनमें सन्देह घर कर गया था कि जिस दिन वे स्नान करेंगे उन्हें ऐसी असाध्य बीमारी लग जायेगी जिससे वे कभी छुटकारा न पा सकेंगे और जीवन-भर उस बीमारी को ढोना पड़ेगा। एक बार स्वनामधन्य बन्धुवर डॉ० हरिवंशराय बच्चन से जब इस सम्बन्ध में बातचीत हुई तो उन्होंने बताया कि मैंने भी यही सुना है कि हरिऔधजी ने 18 वर्ष तक स्नान नहीं किया। पता नहीं यह बात कहां तक सत्य है क्योंकि उन्हें देखने से कदापि आभास नहीं होता था कि उन्होंने स्नान नहीं किया है या उन्हें स्नान किये वर्षों गुजर गये हैं। वे पवित्र और निर्मल लगते थे, पर थे दुबले-पतले।

हम सब लोगों के सामने हरिऔधजी का एक गम्भीर शिक्षक का रूप रहता था किन्तु कभी-कभी आधुनिक कवि और रीति-रिवाज पर वे जो व्यंग्य कसते थे उससे उनके विनोदप्रिय स्वभाव का परिचय मिलता था। हमें याद है कि क्लास में एक बार एक विद्यार्थी अपनी आंखों में कष्ट होने के कारण काला चश्मा लगाकर आया था। उसे देखकर हरिऔधजी ने फबती कसी थी कि काली ऐनक दुखती हुई आंख का कष्ट तो दूर करती ही है इससे एक और बड़ा लाभ है कि वह जिस सुन्दर चेहरे को छिपकर देखना चाहे उसे बड़े आराम से देख

सकती है और जिसे वह देख रही होगी उसे पता भी नहीं लगेगा कि कोई उसकी ओर निहार रहा है।

एक बार गोस्वामी तुलसीदास का उल्लेख करते हुए कहा था, (पता नहीं यह प्रसंग किस प्रकार उपस्थित हुआ) "उस बाबा का नारी वर्णन कैसे सजीव हो सकता है जो स्वयं अपनी पत्नी से तिरस्कृत हुआ हो और जिसके अटूट प्रेम का प्रतिफल भी उपदेश 'लाज न लागत आपकू दौरे आयहु साथ' में मिला। ऐसा गोस्वामी सीता माता का ही वर्णन कर सकता है, जिनका समूचा जीवन इकतरफा रहा। जिसे अपनी पत्नी का ही स्नेह न मिला हो वह प्रेम का वर्णन कैसे कर सकता है ? जिसमें अनुभव न हो उसके काव्य में सजीवता नहीं आ सकती। सच तो यह है कि हरिऔधजी ने जैसा सजीव नारी चित्रण किया वैसा अन्यत्र बहुत कम दिखाई देता है।

हरिऔधजी पं० रामचन्द्र शुक्ल की बड़ी इज्जत करते थे और उनका उल्लेख सदा ही आदर और मान के साथ किया करते थे। यद्यपि शुक्लजी जब गद्य पढ़ाते थे तो देखने में शुष्क, नीरस और अत्यन्त गम्भीर लगते थे, किन्तु उस शुष्क आवरण के अन्दर कितना सरस हृदय उनके अन्दर समाया हुआ था इसके उदाहरण कभी-कभी मिल जाया करते थे।

एक चुटकुला सुना था कि एक बार दीनजी (श्री भगवानदीन) और शुक्लजी एक इक्के पर बैठे हुए कहीं जा रहे थे। उसी समय आकाश में कटकर कोई पतंग गिरी, तभी पास से ही एक इक्का तेजी से निकला, जिसमें निश्चय ही कोई मंगलामुखी बैठी हुई थी और उसके साथ कोई रईस किस्म के व्यक्ति बैठे थे। उसे ही लक्ष्य कर दीनजी ने शुक्लजी से परिहास में कहा, "उड़ायेंगे शुक्ल जी ?" बात इंसानी थी पर संकेत कटी हुई पतंग की ओर किया गया था। इसे शुक्लजी भी समझ गये थे, और उन्होंने तत्काल जवाब दिया, "भाई, हम उड़ाई हुई नहीं उड़ाया करते।"

एक दिन क्लास में पता नहीं किसने इस घटना का उल्लेख किये बिना एक सरस वातावरण में पूछ लिया कि कभी आप और दीनजी इक्के पर बैठकर निकले हैं ? तो शुक्लजी ने मूछों ही मूछों में मुस्कराते हुए केवल इतना ही कहा, "काशी के इक्के भी दुनिया में न्यारे हैं।" और उन्होंने दीनजी का उल्लेख बिलकुल नहीं किया।

एक और किस्सा उन दिनों सुना था :

एक बार एक भिखारी उनके सामने आ खड़ा हुआ और हाथ फैलाते हुए बोला, "बाबू आपकी टोपी ऊंची रहे।" बात यह थी कि आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल गोल टोपी लगाया करते थे और शायद उसी को लक्ष्य करके भिखारी ने याचना की थी और शायद उसका आशय उनका रुतबा बुलन्द होने से था। शुक्लजी ने उसे भिक्षा देते हुए पूछा, "भाई यह तो बताओ, अगर किसी औरत से भीख मांगनी हो तो क्या कहोगे ?"

बेचारा भिखारी असंमजस में पड़ गया। जब वह कुछ न बोल सका तो शुक्लजी ने स्वयं उसका समाधान करते हुए कहा, "कहना, मेम साहब की जूती ऊंची रहे।"

उनके चुटीले व्यंग्य की एक बात और भी याद आ रही है जो उनके ही समकालीन साहित्यिक मित्र ने सुनायी थी कि एक बार आचार्यजी अपने दो साहित्यिक मित्रों के साथ लखनऊ के अमीनाबाद पार्क में टहल रहे थे। गर्मी का दिन था। प्यास जोरों से लगी तो तीनों मित्र एक शर्बत की दुकान पर जा खड़े हुए। संयोग से उस दुकान की मालकिन एक महिला थी। शर्बत के जो पैसे उसने मांगे वह कुछ अधिक जंचे। इसपर एक साहित्यिक मित्र कुछ तनसे गये तो शुक्लजी ने धीरे से कहा, "दे दीजिए पैसे, इसी में शर्बते दीदार के पैसे भी शामिल हैं।"

काशी विश्वविद्यालय के उन दिनों में एक और प्रसंग भी स्मृतिपटल पर बड़ा गहरा पैठा है। भाई बच्चनजी उन दिनों एक 'एंग्री यंगमैन' की तरह काव्यजगत् में आये थे। 'मधुशाला' की पूरी रुबाइयां वह लिख भी नहीं पाये थे कि तभी सम्भवतः प्रथम बार वाराणासी में उनका काव्यपाठ हुआ था।

बात 1933 की है। बिड़ला छात्रावास में पड़ोस के कमरे से मधुर कण्ठ से कवितापाठ का धीमा-धीमा स्वर मेरे कमरे में सुनाई पड़ा। झट से बीच का परदा हटाया तो देखा मेहरोत्राजी के कमरे में घुंघराले बालोंवाले एक युवक ने अपना स्वर बंद कर लिया। मेहरोत्राजी ने कहा, "अगर कविता सुनने का इतना शौक है तो कल शिवाजी हाल पहुंचना।"

और शाम को शिवाजी हाल में वही युवक हिन्दी की रुबाइयां सुना रहा था। धीरे-धीरे नवयुवकों का ही नहीं, प्रो० मनोरंजनप्रसाद सिंह तथा बड़ों का भी सिर लय के साथ-साथ हिल निकला और कविता की अंतिम पंक्तियां दुहराई जाने लगीं। इससे पूर्व यद्यपि कई कवि-सम्मेलनों में जाने का अवसर मुझे मिला था पर उस दिन कुछ ऐसा नशा छा गया जो पहले कभी अनुभव नहीं हुआ था। उस युवक कवि के स्वर में अपार आकर्षण था और ऐसा लगता था कि हमारे मन की बात कही जा रही है।

यह युवक कवि थे भाई हरिवंशराय बच्चन और उन्होंने जिस कविता का पाठ किया था वह भी 'मधुशाला'। उस समय मन में किस प्रकार की गुदगुदी उठी थी वह तो नहीं बता सकता, किन्तु ऐसा लग रहा था कि भाई बच्चन हमारे ही मन की बात कह रहे हैं। ऐसा अनुभव हो रहा था कि शब्द उनके हैं पर बात हमारी ही है। उस शाम कविता सुनते-सुनते मन नहीं भरा था और सच तो यह है कि उस दिन हम सैकड़ों नहीं हजारों युवक कागज-पेंसिल लेकर गये और सुन-सुनकर रुबाइयां लिख डालीं। मुझे आज भी याद है कि महीनों तक वे रुबाइयां विश्वविद्यालय के कमरों, रेस्तराओं और खेल के मैदानों में सुनी जा सकती थीं। तब या तो हम विद्यार्थियों की जिह्वा पर राष्ट्रीय गीत थे या फिर मधुशाला।

मुझे याद है 'मधुशाला' के बारे में युवकों का एक वर्ग तो ऐसा लगता था जो उसे गाने और सुनने को लालायित रहता था, पर कुछ ऐसे भी थे जो कवि को पियक्कड़ मानते थे और उनका आरोप था कि बच्चनजी अपनी उस कविता द्वारा शराबनोशी का प्रचार कर रहे हैं। आलोचकों का स्वर मंद पड़ गया। सचाई उजागर होकर रही, पर झूमनेवालों की कमी आज भी नहीं है। 'मधुशाला' की ये पंक्तियां कितना यर्थाथ चित्रण करती हैं :

कितने साकी अपना-अपना,
काम खतम कर दूर गये,
कितने पीने वाले आये,
किन्तु वही है मधुशाला।

और 1940 की बात है। एटा में विराट् कवि-सम्मेलन था और स्थान था आर्यसमाज मंदिर। संयोग से मैं भी वहां उपस्थित था। संयोजक चिन्तित थे क्योंकि आर्यसमाज के एक नेता ने गम्भीर चेतावनी दी थी कि समाज मन्दिर में सिगरेट-पान तक का प्रयोग नहीं किया जा सकता और शराब पीने का प्रचार करना तो दूर रहा। मैंने उनसे कहा, "श्रीमन् पहले आप सुन तो लीजिए फिर जो कहना-करना हो कीजिएगा।" इसे आश्चर्य ही कहा जायगा कि वही चेतावनी देने वाले वकील साहब भरी सभा में झूम रहे थे और कह रहे थे, कवि ने तो साफ कहा है :

भावुकता अंगूर लता से।
खींच कल्पना की हाला।

कवि साकी बनकर आया है।
भरकर कविता का प्याला।

कभी न कण भर खाली होगा।
लाख पियें, दो लाख पियें।
पाठक गण हैं पीने वाले।
पुस्तक मेरी मधुशाला ॥

फिर अनेक स्मृतियां हैं अलीगढ़ कवि-सम्मेलन की, इन्दौर कवि-सम्मेलन की और भी न जाने कहां-कहां की। पर 23 जनवरी, 1958 की याद धुंधली नहीं पड़ी।

राजधानी में गणतंत्र दिवस का श्रीगणेश होता है लाल किले में कवि-सम्मेलन से। उस सम्मेलन में जैसा कि स्वाभाविक था भाई बच्चन की मधुशाला की मांग हुई और उन्होंने पाठ भी किया। यहां मेरा तरुण पुत्र हृदय, जो संभवतः उस समय उसी आयु का था जैसा कि 1933 में मैं था, कुछ उसी मुद्रा में बड़ी तन्मयता और मनोयोग से काव्यपाठ सुन रहा था और साथ-साथ मधुशाला की कुछ पंक्तियां गुनगुना भी रहा था। तभी मैंने भाई बच्चन से कहा कि आपकी मधुशाला और उसके साकी पर समय के थपेड़ों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। जितने आकर्षक और मनमोहक आप पिताओं को लगते थे उतने ही उनके पुत्रों को भी लग रहे हो। आपकी कविता सुनते-सुनते हम बूढ़े हुए जा रहे हैं पर आश्चर्य है कि आप अभी भी 'बच्चन' ही बने हैं और मधुशाला में वही ताजगी बनी है।

अब भाई बच्चन श्री अमिताभ के पिता हैं और नई पीढ़ी उन्हें इस रूप में जानने लगी है। □

हाजिर-जवाबी

हाजिर-जवाबी भी एक कला है—बहुत बड़ी कला। कहते हैं, सुभाषचंद्र बोस जब आई० सी० एस० के इण्टरव्यू में गये, तो एक अंग्रेज साहब ने अपने हाथ की अंगूठी निकालकर पूछा था, "क्या तुम इसमें से निकल सकते हो ?"

सुभाष बाबू ने कहा, "हां।" और तुरन्त एक कागज की चिट पर अपना नाम लिखकर उसे उसमें से निकाल दिया। और वे चुन लिये गये।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में बौद्धदर्शन

डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे

□□

आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रभाव स्रोत सांस्कृतिक पुनर्जागरण के प्रमुख प्रेरणासूत्रों में वेदांत-दर्शन के साथ बौद्धदर्शन भी रहा है जिनका अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के स्वर्णकाल छायावाद-युग में हमारे कवि-मनीषी न केवल बौद्ध साहित्य, धर्म, दर्शन तथा संस्कृति की गवेषणा के फलस्वरूप इस प्रभावावर्त में ही आये अपितु छायावादी कवियों की निजी परिस्थितियों, स्वभाव और युगीन परिवेश-प्रवृत्तियों के कारण भी वे बौद्ध सिद्धांतों से निश्चयपूर्वक प्रभावित हुए। इसीलिए छायावादी काव्य में गौतम बुद्ध के दुखवाद, क्षणिकवाद एवं करुणा-भावना की सुस्पष्ट प्रतिध्वनि ही नहीं सुनाई पड़ती है प्रत्युत संसार की अनित्यता, मध्यमा प्रतिपदा के आख्यान आदि की झलक परिलक्षित है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में बौद्धदर्शन को सर्वाधिक एवं श्रेष्ठ अभिव्यक्ति जयशंकर 'प्रसाद' और महादेवी वर्मा ने दी। 'प्रसाद'-साहित्य बौद्धदर्शन, संस्कृति तथा युग का अक्षय भण्डार है।

जयशंकर प्रसाद वाराणसी के रहनेवाले थे और सारनाथ उनका प्रिय भ्रमण, आकर्षण तथा प्रेरक केन्द्र था। धम्मेख स्तूप के निकट प्राचीन बौद्ध विहार के ध्वंसावशेष, संग्रहालय की सौम्य बुद्ध प्रतिमाएं, धर्मचक्र-प्रवर्तन, बौद्ध भिक्षु अनागरिक धर्मपाल के साथ प्रगाढ़ मैत्री आदि ने प्रसाद में भौतिक रूप से बौद्धदर्शन के प्रति झुकाव उत्पन्न किया और बौद्ध विचारधारा के गहन एवं व्यापक अनुशीलन ने उनकी प्रज्ञा को तद्विषयक वाङ्मय रचना के लिए समुचित तात्विक सामग्री प्रदान की। प्रसाद ने 'सारनाथ के प्रति' अपनी कविता में, 'छोड़ जीवन के अतिवाद, लो मध्य पथ से गति सुधार' कहकर, बौद्ध दर्शन की सम्पुष्टि की। प्रसाद के काव्य, नाटक तथा कहानियां—तीनों ही बौद्धदर्शन से अभिभूत रहीं। प्रसाद 'चन्द्रगुप्त' नाटक में कहते हैं, "मैं स्वयं हृदय से बौद्धमत का समर्थक हूं, केवल उसकी दार्शनिक सीमा तक इतना ही कि संसार दुःखमय है।" इसीलिए प्रसाद का 'अजातशत्रु' संसार को दुःखमय मानता है।

बौद्धदर्शन में सर्वं क्षणिकं, सर्वदुःखं, सर्वमनात्मकम् के रूप में तीन सिद्धान्तों का निरूपण मिलता है जिनको क्षणिकवाद, दुःखवाद, एवं अनात्मवाद कहा गया है। प्रथम सिद्धांत के अंतर्गत स्कंध, आयतन तथा धातु या रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान—सभी अनित्य एवं क्षणिक हैं। इसी क्षणिकवाद के कारण 'प्रसाद' ने अपने नाटक 'अजातशत्रु', 'राज्यश्री', और 'स्कन्दगुप्त', उपन्यास 'तितली' तथा 'इरावती' और काव्य 'लहर' में जगत् को क्षणभंगुर, चंचल, दो दिन का सपना, नश्वर और प्रकृति को प्रतिक्षण चंचला के समान परिवर्तनशीला कहा है। वे 'कामायनी' में मौन, विनाश, विध्वंस, अंधकार, शून्यता एवं अभाव को सत्य मानते हैं।

वे बौद्धदर्शन के द्वितीय सिद्धान्त दुःखवाद के भी परम हामी हैं। वे 'एक घूंट' नाटक में सबको दुःखी एवं विकल प्रतिपादित करते हुए, सबको एक-एक घूंट की प्यास से पीड़ित बताते हैं। 'झरना' में अपार दुःख की बात कहते हैं तो 'कंकाल' में तृष्णा को शूकरी के समान मानते हैं। 'लहर' एवं 'अजातशत्रु' में दुःख से मुक्ति हेतु ही तथागत बुद्ध का अवतार हुआ था।

बौद्धदर्शन के तीसरे प्रमुख सिद्धान्त अनात्मवाद के आधार पर, प्रसाद ने 'इरावती' तथा 'स्कन्दगुप्त' में बौद्ध धर्म को अनात्मवादी कहा है।

उक्त तीनों सिद्धान्तों के अतिरिक्त, बौद्ध करुणा के प्रति अत्यधिक आग्रही होने के कारण महादेवी वर्मा ने अपने एक निबंध में बुद्ध को "करुणा का संदेशवाहक" कहा। प्रसाद-साहित्य में करुणा को मंत्र के रूप में स्वीकार किया गया है। बौद्धदर्शन में करुणा के साथ-साथ अहिंसा, मुदिता, सेवा, दया, विश्वमैत्री, धर्माचरण आदि पर भी विशेष आग्रह मिलता है। प्रसाद विश्वमैत्री, सेवा, उपकार, समवेदना, प्रेम, पवित्रता के प्रति अनुरोधशील हैं।

प्रसाद अपनी कहानियों 'पुरस्कार' तथा 'सालवती' में बौद्ध युग तथा संस्कृति को तो उभारते हैं परन्तु 'देवरथ' में बौद्ध धर्म के स्खलित तथा विकृत रूप को भी ओझल नहीं होने देते। प्रसाद का प्रबुद्ध तथा सर्वात्मचेता व्यक्तित्व बौद्धदर्शन को सम्पूर्ण सीमाओं के साथ अंगीकार नहीं करता। वे बौद्धदर्शन की करुणा, समता, विश्वमैत्री, अहिंसा, शील, विनय, सदाचरण आदि अच्छी-अच्छी बातों को तो अपनत्व प्रदान करते हैं परन्तु असमय में युवक-युवतियों के संन्यासी बनाने का घोर विरोध करते हुए 'इरावती' में लिखते हैं कि बौद्ध धर्म के कुहर में मनुष्य जीवन प्राप्त नहीं कर पाता, न जाने इस कुक्कुटा राम की प्राचीर कब गिरेगी और बंदिनी मानवता कब मुक्त होगी ?

इसीलिए प्रसाद शाश्वतवाद, आनंदवाद एवं सर्वात्मवाद की ओर उन्मुख हो गये।

महादेवी तो अपने यौवनकाल के प्रवेशद्वार पर बौद्ध भिक्षुणी बनते-बनते ही रह गयीं और बौद्ध गुरु की नारियों के प्रति उपेक्षापूर्ण दृष्टि को देखकर उन्हें यह अपना विचार त्याग देना पड़ा। अपनी किशोरावस्था से बौद्धदर्शन के प्रति विशेषाकर्षण को महादेवी 'यामा' की भूमिका में स्पष्ट रूप से स्वीकार करती हैं—बचपन से ही भगवान् बुद्ध के प्रति एक भक्तिभाव अनुराग होने के कारण उनके संसार को दुःखात्मक समझनेवाले दर्शन से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।

महादेवी वर्मा ने लिखा है कि बुद्ध के व्यक्तित्व में दो विशेषताएं ऐसी हैं जिनका संयोग सहज नहीं—कठोर बुद्धिवाद और कोमल मानवीय तत्त्व। संसार के धर्म-संस्थापकों की पंक्ति में बुद्ध ही ऐसे अकेले हैं जिन्होंने मनुष्य के सम्बन्धों में सामंजस्य लाने के लिए परमात्मा की मध्यस्थता स्वीकार नहीं की, मनुष्यता उत्पन्न करने के लिए किसी पारलौकिक अस्तित्व का सहारा नहीं लिया। जिस निर्मम बौद्धिकता के साथ वे अपने वचनों को भी तर्क की कसौटी पर कसकर ही स्वीकार करने के लिए कहते हैं, उसी के साथ वे जीवन के अंतिम क्षणों में अपने संस्थापित धर्म के लिए कोई उत्तराधिकारी नहीं चुनते।

महादेवी के काव्य में बुद्ध के दुःख के सम्बन्ध के चार आर्य सत्यों को सम्यक अभिव्यंजना मिली है—(क) संसार दुःखों से परिपूर्ण है। (ख) दुःख के पीछे कारण है। (ग) सांसारिक दुःखों से छुटकारा मिल सकता है। (घ) दुःख से छुटकारा पाने का उपाय भी है। महादेवी के प्रसंग में इस तथ्य को सरलतापूर्वक स्वीकार किया जा सकता है कि उनके दुःखवादी दृष्टिकोण के पोषण में बौद्धदर्शन की गहन प्रभावान्विति है। बुद्ध विश्व के समस्त दुःख का मूल कारण तृष्णा मानते हैं। महादेवी भी कहती हैं :

चिर ध्येय यही जलने का
ठण्डी विभूति बन जाना,
है पीड़ा की सीमा यह
दुःख का चिर सुख हो जाना।

× × ×

यह चिर अतृप्ति हो जीवन
चिर तृष्णा हो मिट जाना।

दुःख का मूल कारण अस्थिर, अनित्य एवं क्षणभंगुर पदार्थों एवं व्यक्तियों के प्रति मोह है :

मोह-मदिरा का आस्वादन
किया क्यों हे भोले जीवन।
तुम्हें ठुकरा जाता नैराश्य
हंसा जाती है तुमको आश।
और
यहां किसका अनंत यौवन
अरे अस्थिर छोटे जीवन !
तुम्हें करना विच्छेद सहन
न भूलो हे प्यारे जीवन !

महादेवी 'यामा' की भूमिका में दुःखवाद को अपना जीवन तथा काव्यदर्शन मानती हुई कहती हैं—दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बांध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुंचा सकें किन्तु हमारा एक बूंद आंसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है परन्तु दुःख सबको बांटकर—विश्वजीवन में अपने जीवन को, विश्ववेदना में अपनी वेदना को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल-बिंदु समुद्र में मिल जाता है—कवि का मोक्ष है।

महादेवी का दुःखवाद बौद्ध दर्शन की देन है परन्तु डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन' के गीतों में अभिव्यक्त दुःखवाद को बौद्धदर्शन के साथ न जोड़कर, हम उनके मुक्त जीवन के प्रति प्रतिबद्ध पाते हैं। महादेवी के गीतों में मानवता की मांगलिक ध्वनि है तो बच्चन के गीतों में मानवता के मन की अनुगूंज। फिर भी बच्चन ने 'बुद्ध और नाचघर' नामक अपनी काव्यकृति में जहां एक ओर अट्ठाईस मुक्त छंद की कविताओं को समाविष्ट किया तो दूसरी ओर अपनी स्वातंत्र्योत्तर कविताओं में व्यंग्य का श्रीगणेश इसी से किया। बच्चन की इस बहुचर्चित व्यंग्य-कविता में बुद्ध को सम्बोधित करके आज के युग की विडम्बना को उभारने का प्रयास मिलता है :

बुद्ध भगवान्
अमीरों के ड्राइंग रूम
रईसों के मकान
तुम्हारे विचारों से अनजान
सपने में भी उन्हें इसका नहीं आता ध्यान।
शेर की खाल, हिरन की सींग,
कला-कारीगरी के नयनों के साथ तुम भी हो आसीन,

लोगों की सौन्दर्यप्रियता को
देते हो तस्कीन
इसलिए तुमने एक की थी आसमान जमीन।

डॉ० रामविलास शर्मा अपने ग्रन्थ 'आस्था और सौन्दर्य' में इस कविता के व्यंग्य और पूंजीवादी समाज-व्यवस्था के खोखलेपन को प्रकट करने की इसकी प्रगतिशीलता से अभिभूत हैं।

इस कविता के समारम्भ 'बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघ शरणं गच्छामि' की परिणति इस तरह होती है :

लोग हो रहे हैं नशे में लाल।
युवकों ने युवतियों को खींच
लिया है बाहों में भींच,
छाती और सीने आ गये हैं पास,
होठों-अधरों के बीच
शुरू हो गई है बात,
शुरू हो गया है नाच,
आर्केस्ट्रा के साज—
ट्रमेट, क्लैरिनेट, कारनेट—पर साथ
बज उठा है आज,
निकलती है आवाज
मद्यं शरणं गच्छामि,
मांसं शरणं गच्छामि।
डांसं शरणं गच्छामि।

बौद्ध दर्शन के प्रमुख सम्वाहक कवियों प्रसाद और महादेवी के अतिरिक्त सुमित्रानंदन पंत, गुरुभक्ति सिंह 'भक्त' आदि में भी बौद्धदर्शन के छींटे मिलते हैं। पंत के पूर्ववर्ती काव्य-चिंतन पर बौद्ध शून्यवाद का प्रभाव परिलक्षित है। इसके दृष्टांत 'जीवन यान' तथा 'परिवर्तन' जैसी कविताओं में खोजे जा सकते हैं। उनकी 'वाणी' काव्य कृति की कविता 'बुद्ध के प्रति' में उनका स्तवन भाव निहित है। गुरु भक्तसिंह 'भक्त' के 'आधुनिक कवि' (द्वादश भाग) में 'बुद्ध प्रतिमा प्रतिष्ठापन' नामक कविता प्राप्य है।

हिन्दी के राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य ने भगवान् बुद्ध तथा महात्मा गांधी को समन्वित कर दिया। महाकवि अश्वघोष के संस्कृत के 'बुद्ध चरित्र' और बंगला के नवीन सेन के 'अभिताभ' के समान, हिंदी में प्रबंधकाव्य की परम्परा को मैथिलीशरण गुप्त ने 'यशोधरा' तथा अनूप शर्मा ने 'सिद्धार्थ' द्वारा सम्वर्धित किया। सन् 1937 में लिखित 'सिद्धार्थ' महाकाव्य 18 सर्गों तथा 'प्रियप्रवास'-शैली से युक्त है। प्रभागचन्द्र शर्मा ने 'भगवान् बुद्ध' नामक खण्ड-काव्य लिखा। छायावाद की सांस्कृतिक चेतना के पुरोधा सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' करुणा धर्म के उन्नायक भगवान् बुद्ध के प्रति अपनी प्रणति निवेदित करने में नहीं चूकते :

आज सभ्यता के वैज्ञानिक जड़ विकास पर
गर्वित विश्व नष्ट होने की ओर अग्रसर,
स्पष्ट दिख रहा,
केवल पैसे, आज लक्ष्य में हैं मानव के,
विमुख भोग से, राज कुंवर, त्यागकर सर्वस्थिति,

एकमात्र सत्य के लिए, रूढ़ि से विमुख रत
कठिन तपस्या, में पहुंचे लक्ष्य को तथागत।

श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' द्वारा लिखित 'मानव' खण्डकाव्य के 66 सवैयों में दुःखवाद एवं निर्वेद को प्रधानता मिली है। यह दुःखवाद महादेवी के अतिरिक्त, अन्य नारीकाव्य में भी मिलता है जिनकी पुरस्कर्त्री तारा पाण्डेय, होमवती देवी, पुरुषार्थवती और चकोरी रही हैं। छायावाद युग के अवसान में सन् 1937 की अपनी काव्यकृति 'शुक पिक' में तारा पाण्डेय कहती हैं :

मैं दुःख से शृंगार करूंगी।
जीवन में जो थोड़ा सुख है,
मृग-जल है उसमें भी दुःख है
छली गयी बहुबार जगत् में,
फिर क्यों अपनी हार करूंगी ?

हिन्दी काव्य के पश्चात्, बौद्धदर्शन की सुष्ठु अभिव्यक्ति जितनी नाटकों में हुई, उतनी उपन्यासों में नहीं। बुद्ध के जीवन से सम्बद्ध समस्त नाटकों पर रचनाक्रम की दृष्टि से विचार किया जाय तो विश्वम्भर सहाय 'व्याकुल' का 'बुद्धदेव' सर्वप्रथम निर्धारित होता है तथापि यह नाट्य कला की दृष्टि से लचर है। इस दिशा में प्रसाद का 'अजातशत्रु' उच्चकोटि का है। इसमें बुद्धदेव आदर्श पुरुष के रूप में स्थापित हैं। मल्लिका बुद्ध के ज्ञान की जीती-जागती व्यावहारिक प्रतिमा है। बिम्बसार तथा बासवी पर बुद्ध का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक का सिंहल का राजकुमार कुमारदास गौतम के पदरज से पवित्र भारतभूमि से मुग्ध हो गया था। वही धातुसेन बौद्धदर्शन को चतुर्थ अंक के पंचम दृश्य में भास्वर बनाता है— अहंकारमूलक आत्मवाद का खण्डन करके गौतम ने विश्वात्मवाद को नष्ट नहीं किया ? यदि वैसा करते तो इतनी करुणा की क्या आवश्यकता थी ? उपनिषदों के नेति-नेति से ही गौतम का अनात्मवाद पूर्ण है। यह प्राचीन महर्षियों का कथित सिद्धान्त, मध्यमा-प्रतिपदा के नाम से संसार में प्रचारित हुआ, व्यक्तिरूप में आत्मा के सदृय कुछ नहीं है। वह एक सुधार था, उसके लिए रक्तपात क्यों ?

बिहार में बुद्ध को लेकर विपुल साहित्य लिखा गया जिसके स्रष्टाओं में डॉ० रामधारीसिंह 'दिनकर', रामवृक्ष 'बेनीपुरी' और ब्रजकिशोर 'नारायण' के नाम अग्रगण्य हैं। रामवृक्ष बेनीपुरी ने अपने नाटक 'तथागत' में बुद्ध के जन्म से लेकर निर्वाण तक की घटनाओं को चित्रित किया है। उदयशंकर भट्ट के अपने नाटक 'मुक्तिपथ' में विचारों की प्रधानता है, घटनाओं का बाहुल्य नहीं। लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'वत्सराज' नाटक का आधार 'स्वप्नवासवदत्ता' है। अम्बपाली को लेकर भी अनेक नाटक लिखे गये जिनमें बौद्ध संस्कृति के पुष्प खिले हैं। रामवृक्ष बेनीपुरी का 'अम्बपाली', लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'वैशाली में वसंत', ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान का 'अम्बपाली' आदि अनेक विश्रुत नाटक हैं। स्वराज्य प्रसाद त्रिवेदी के 'गौतम बुद्ध' और अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य' के 'निर्वाण पथ' नाटक-कथानक का सम्बन्ध सीधे बुद्ध के जीवन से है। सेठ गोविन्ददास के ऐतिहासिक एकांकियों में 'बुद्ध की एक शिष्या विशाखा' तथा 'बुद्ध के सच्चे स्नेही कौन ?' प्रसिद्ध हुए। डॉ० रामकुमार वर्मा के एकांकियों में भी बौद्ध युग को वाणी मिली। अन्य नाटकों में महेन्द्रनाथ का 'बुद्धदेव चरित', चन्द्रराज भण्डारी का 'सिद्धार्थ कुमार' तथा बनारसीदास करुणाकर का 'सिद्धार्थ बुद्ध' उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी उपन्यासों में बौद्धदर्शन की अपेक्षा बौद्ध युग तथा बौद्ध संस्कृति को अधिक

वाणी मिली है। इनमें भगवतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा', आचार्य चतुरसेन शास्त्री का 'वैशाली की नगरवधू', यशपाल का 'दिव्या', डॉ० रामरतन भटनागर का 'अम्बपाली' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

ब्रजकिशोर 'नारायण' के नाटक 'वर्द्धमान महावीर' और वीरेन्द्रकुमार जैन के उपन्यास 'अनुत्तर योगी' का सम्बन्ध यद्यपि भगवान् महावीर से है तथापि उनमें बौद्ध-युग भी झंकृत है। सियारामशरण गुप्त के नाटक 'पुण्य पर्व' में भी बौद्ध संस्कृति को स्वर मिले हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने एडविन आरनोल्ड के 'लाइट आफ एशिया' का सन् 1922 में 'बुद्ध चरित' के नाम से ब्रजभाषा में अनुवाद किया। इस अनुवाद में केवल अनुवादक के ही नहीं अपितु एक सिद्धहस्त कवि के भी सिद्ध दर्शन होते हैं। अनेक स्थलों पर उन्होंने मात्र परिवर्तन ही नहीं किया अपितु अपनी कल्पना तथा सूझ से काव्यगत रोचकता एवं लालित्य की वृद्धि कर दी। व्योहार राजेन्द्रसिंह ने 'धम्मपद' का दोहानुवाद किया।

हिन्दी के बौद्ध धर्मावलम्बी साहित्यकारों में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदंत आनंद कौसत्यायन और नागार्जुन के नाम सर्वोपरि हैं। ललित निबंध साहित्य में भी बौद्ध-दर्शन तथा बौद्ध संस्कृति की बड़ी चर्चा आयी है और इनमें आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० विवेकीराय, डॉ० विद्यानिवास मिश्र तथा कुबेरनाथ राय के नाम अग्रगण्य हैं। हिन्दी का व्यंग्य साहित्य भी बुद्ध को छोड़ नहीं पाया। व्यंग्यकार राधाकृष्ण ने पौराणिक विषयों को नयी दृष्टि से उपस्थित किया। उनकी नयी कहानियों में 'अनुत्तर योग-क्षेम की पर्येषणा' में गौतम बुद्ध का राजनीतिक चिंता से आकुल व्यक्तित्व अंकित हुआ है। भगवान् बुद्ध के आधुनिक संस्करण का अनुमान इस अकेले वाक्य से लगाया जा सकता है—ऐसा सोचकर उन्होंने अपने काले घुंघराले केशों वाले फ्रेंचकट मस्तक का मुण्डन करवा दिया, टेरीकाट की पतलून और टेरिलीन की बुशशर्ट उतारकर खादी का काषायवस्त्र धारण कर लिया और गांधी टोपी लगाकर पिता को रोते हुए और पत्नी को सोते हुए छोड़कर 'किं कुशलम्' की गवेषणा करते हुए वहां जा पहुंचे, जहां कांग्रेस कमेटी का कार्यालय था और आला-कमान बैठा हुआ श्रद्धालुओं से नमस्कार, नामपत्र और चंदा ग्रहण कर रहा था और अपने प्रियजनों में विधानसभा तथा लोकसभा का टिकिट वितरण कर रहा था।

हिन्दी में बौद्धदर्शन से सम्बन्धित समीक्षात्मक ग्रन्थों के रचयिताओं में धर्मानंद कौशाम्बी 'भगवान् बुद्ध', डॉ० बलदेव उपाध्याय 'बौद्धदर्शन', राहुल सांकृत्यायन 'बौद्ध-दर्शन', आचार्य नरेन्द्रदेव 'बौद्ध धर्मदर्शन', युवाचार्य महाप्रज्ञ मुनि श्री नथमल 'श्रमण संस्कृति की दो धाराएं : जैन और बौद्ध' आदि के नाम सर्व प्रख्यात हैं। 'मध्यकालीन साहित्य पर बौद्धमत का प्रभाव' शोधकृति भी दृष्टव्य है।

बौद्धदर्शन आज भी साहित्य के लिए चिर अमृत-कुम्भ बना हुआ है जिससे साहित्यकार सुधाबिन्दु प्राप्त कर रहे हैं।

बहार का दिल

मंजूरुल अमीन

□□

यूनानी कथाओं में नारसीसस नाम के एक युवक की दास्तान मिलती है। एक यूनानी लड़की जिसका नाम था एको, उसके प्यार में गिरफ्तार हो गयी थी। नारसीसस ने एको के प्यार को ठुकरा दिया। इस अपराध के लिए ओलम्पियन देवताओं ने नारसीसस को यह सजा दी कि वह पानी में अपनी ही छाया को देखकर अपने आप ही से प्यार करने लगे। और हुआ भी यही; अपने आपको न पा सकने के दुःख ने उसकी जान ले ली। कहते हैं नरगिस फूल का जन्म नारसीसस की खाक से हुआ।

कश्मीर की घाटी में नरगिस का पौधा पाया जाता है। मार्च के अंत में जब महीनों से पड़ी हुई बर्फ पिघलने लगती है तो अकस्मात ही नरगिस का पौधा धरती का सीना चीरकर बाहर निकल आता है और उसमें सफेद और पीले पत्ते खिल उठते हैं और नरगिस के फूल भी। दूर-दूर तक ये फूल दिखाई देते हैं, और महीनों के बाद ये पत्ते और फूल देखनेवालों की नजरों को राहत देते हैं।

यह गीतिनाट्य मैंने कश्मीर में रहते हुए एक ऐसे ही मौसम में लिखा था जब पहली बार एक सुबह मेरी मुलाकात इस खूबसूरत फूल से हुई थी।

उदघोषक : ये दास्तां जो सुनेंगे थोड़ी ही देर के बाद सुनने वाले
जो फूल चुनते हैं इसको सुनकर चुनेंगे वो फूल चुनने वाले।

[संगीत]

वो मुल्क यूनान जिसने दुनिया को इल्मो हिकमत[1] की रौशनी दी
वो मुल्क यूनान जिसने दुनिया को राजनीति की आगाही[2] दी
जहां पे तहजीब और तमद्दुन[3] की शमा रौशन रही है बरसों
जहां के फन और फलसफे ने किया है दुनिया पे राज सदियों
जहां दरया हैं या अमृत के धारे
नजारे नाम जिनके प्यारे-प्यारे
उलमपस, पारनासस और हेलिकून
जहां खिलते हैं फूल उगती है जैतून

1. ज्ञान और दर्शन; 2. सीख; 3. संस्कृति;

उलमपस देवताओं का है आसन
उलमपस जो बढ़ा दे दिल की धड़कन
बुलन्दी और फिर ऐसी बुलन्दी
जहां पर आप ही झुक जाये पसती[1]
पुराने यूनान से ताआल्लुक[2] है इस कहानी के मर्दोंजन[3] का
वहां की तहजीब ही से रिशता है इस कहानी के बांकपन का

[कोरस]

(ज्योस की बेटियों का)

आके कोई जहाँ को बदल दे
इस जमीन आसमाँ को बदल दे
दिल पे इक अब्र[4] सा छा गया है
सोच पर एक कोहरा लगा है।
या अन्धेरा सदा दे रहा है
आ के कोई जहाँ को बदल दे
इस जमीन आसमाँ को बदल दे
गीत चुपचाप हैं साज खामोश
गीतकारों की आवाज खामोश
नाज चुपचाप अन्दाज खामोश
आ के कोई जहाँ को बदल दे
इस जमीन आसमाँ को बदल दे

प्लूटार्क : नाम मेरा प्लूटार्क है दोस्तो
मुल्क यूनान का मैं हूं तारीखदाँ[5]
ये हैं नौ देवियां, ज्योस की बेटियाँ
ज्योस जो है उलम्पस का इक देवता
गम में डूबा हुआ सम में भीगा हुआ
आपने जिनसे नगमा सुना है अभी

पहली देवी का रिश्ता है तारीख से
दूसरी का ताआल्लुक है संगीत से
चाहिए तीसरी को अदब[6] में निशात[7]
चौथी देवी को फन[8] में अलम[9] चाहिए
नाच और रंग से पांचवीं को लगाओ
मरसिया[10] छटवीं देवी के है दिल पसन्द

1. नीचाई 2. संबंध; 3. पुरुष और नारी 4. बादल; 5. इतिहासकार 6. साहित्य
7. प्रहसन 8. कला 9. दुखांतिकी; 10. शोकगीत;

ज्योस की बेटियों में जो है सातवीं
इशकिया शायेरी पर है दिल से फ़िदा[1]
आठवीं बेटी सब बेटियों से अलग
उसकी ज्योतिष में हद से सिवा है रुचि
आखिरी देवी इन देवियों में जो है
वीरगाथा से उसको बहुत है लगावो

ये परिचय तो नौ देवियों का हुआ।
(एक दर्द-भरी आवाज आती है)

दूर से दर्द की सदा[2] आयी
हो न हो ये सदा जमीन की है

जमीन : नींद-सी बोझल खमोशी ऊंघता-सा हर दयार[3]
आसमां पर धुँधले धुँधले से चिरागों की कतार
कोई कदमों का निशां बाकी न कोई रहगुजर[4]
कारवां की खोज में बेचैन सा हरसू[5] गुबार[6]
ढूंढ़ती नजरें किसी जानिब निशाँ पाती नहीं
घुट गयी सहरा में कोई भी सदा आती नहीं

ज्योस : जमीन बेचैन और दुखी है
जमीन के दु:ख को बांटना है
मैं ज्योस हूं देवताए यूनाँ
उठो उठो देवियो और उठकर
जमीन पर भेज दो उसे तुम
उस आँख को जो कि मुदत्तों से
दुखी-सी है बेकरार-सी है
वो आंख जो सोगवार[7] सी है
वो आंख जो अश्कवार[8] सी है
उस आंख को एक रूप दे दो
उस आंख को एक रंग दे दो
उस आंख को दे दो मुसकुराहट
बहार दे दो सुहावनी सी
वो पाँव रखे जमीं पे जूंही
उसी घड़ी से जहान भर में
न हो अन्धेरा नो हो खमोशी

तारीख की देवी : मुझ को है नाज के तारीख की देवी हूँ मैं
ऐ पिता आपने जो कुछ भी दिया है आदेश

1. अत्यंत रुचि 2. आवाज 3. स्थान 4. रास्ता 5. हर तरफ 6. धूल 7. दुखी 8. जा रो रही हो

अपनी बहनों की तरफ से उसे पूरा कर दूं
हुक्म देती हूँ के वह आंख बने एक जवाँ
लोग उस आंख के मालिक को कहें 'नारसोसस'
उसके आ जाने से आ जाए गुलिस्ताँ में बहार
एक लड़की को बहुत उससे मोहब्बत हो जाये
नाम उस कामनी मूरत का हो जग में 'एको'

एको : नारसिसस के नगर में से हो गर तेरा गुजर
तुझको तकलीफ तो होगी मगर ए बादेसहर[1]
तू जरा उसको मुझ एको का सन्देसा देना
कोई जीता है तो बस आज भी यूं जीता है
जहरे गम खाता है और खूने जिगर पीता है
उसकी बेचैन तबीयत का वही आलम है
तेरे मिलने की उसे आस है पर कम कम है
गर तेरी याद का उसको न सहारा होता
बेरुखी[2] ने तेरी अब तब उसे मारा होता
हो गई होती कभी की वो यहाँ से रुखसत
हो गई होती कभी की वो जहाँ से रुखसत
कब तलक रूह में जखमों को समोए कोई
कब तलक दिल की खराशों को न धोये कोई

तुझ को तकलीफ तो होगी मगर ऐ बादेसहर
नारसिसस को सन्देसा ये मेरा दे आना

बादेसहर : मुझसे एको तेरी हालत नहीं देखी जाती
मैं चली लौटके दम भर ही में आजाऊँगी
नारसिसस को मिलूंगी उसे ले आऊँगी

[आवाज]

एको : कौन है ?
कौन यहां आया है ?

बादेसहर : मैं हूं; कहते हैं जिसे बादेसहर

एको : क्या तू दे आयी है उस शख्स को सन्देश मेरा ?
उसने आने का किया है वादा ?
है तो वो दिल से कठोर !

बादेसहर : नारसीसस ने मुझे देखा तो पूछा मुझसे

नारसीसस : कैसे गुजर रहे हैं उस एको के रात दिन ?

1. सवेरे की ठंडी हवा; 2. किसी को ठुकरा देना।

एको : तू ने ये शेर जरा उसको सुनाया होता
गुल्सिताँ में रहो बागों में खेलो हमसे क्यों पूछो
के रातें किस तरह कटती हैं दिन क्योंकर गुजरते हैं।
खैर फिर और क्या कहा उसने
बादेसहर : तेरा सन्देश उसे मैंने दिया ऐ एको
उसने चुपचाप सुना सुन के असर कुछ न लिया
पहले मुँह फेर लिया और कहा फिर मुझसे
नारसीसस : मुझ को नहीं है उससे किसी तरह का लगाओ
दीवानी गर हुई है जो एको तो मुझको क्या
क्या है अभी वो बादेसहर इतनी बेवकूफ
क्या उसको अब तलक भी वहाँ ये पता नहीं
कहते हैं जिसको इश्क खलल है दिमाग की
एको : शुक्रिया तेरा बहुत, बादेसहर
बादेसहर : मुझको दुःख है···
एको : छोड़ दे मुझको तू मेरे हाल पर
वो नहीं आया तो क्या
याद तो अपनी वो ले सकता नहीं
याद ही उसकी की दो बातें करूँ
तू समझता है कि मैं तुझ को भुला पाऊँगी
नारसीसस ये भ्रम है तेरा
मैंने हर वक्त तुझे चाहा है
एक दिन तुझ पे खुलेगा यह राज
मेरी उम्मीद की मंजिल मेरी चाहत की ये राह
तू समझता है तेरी जिद से बदल सकती है
नारसीसस ये भ्रम है तेरा
मेरी हालत पे तुझे
कैसे आती है हँसी !
इतने दुःख मुझको मेरे ऐ मेरे गमख्वार न दे
मैंने पूजा है तुझे तेरी परसतिश की है
दिल को तू और नये तरह के आजार न दे

हमारे दर्द का नगमा जमीं से आसमाँ तक है
अकेलेपन में उसकी याद दिल के पास आयी है
कहाँ खोले हैं गेसू यार ने खुशबू कहाँ तक है

हर तरफ हर जगह है सन्नाटा
दिल में बस चुभ रहा है इक काँटा
दिल को बस एक बात का गम है
तेरे मिलने की आस कम कम है

देवता मौत का वो आता है
और मुझको उधर बुलाता है
आज मिट जायेगा मेरा आजार
आ भी जायेगा मेरे दिल को करार
आ गया आ गया दमे आखिर
साँस आयेगी अब न लौट के फिर
उसको मेरा पता मिले न मिले
मैं के अब जा रही हूँ दुनिया से
एक कांटा दिलो जिगर में लिये
वही सौदा इक अपने सर में लिये
मुझ को दुःख है मेरी मोहब्बत की
नारसीसस ने कोई कद्र न की।

बादेसहर : निराला तो नहीं पर ये भी इक दस्तूरे दुनिया है
मोहब्बत करनेवाले इस जहाँ से जब भी जाते हैं
परेशाँ और दुखी से और खाली हाथ जाते हैं
सुनो ऐ नारसीसस यह खबर उठते ही तुम सुन लो
तुम्हारी याद करते करते आखिर मर गयी एको

नारसिसस : गजरदम तू ने ऐ बादेसहर ये क्या सुनाया है
मुझे अफसोस ये सुन कर हुआ लेकिन मैं क्या करता
मोहब्बत उसकी सच्ची थी मैं इस को मानता भी हूँ
मगर मजबूर था मैं भी तो अपने दिल के हाथों से
समंदर में उधर पश्चिम के डूबे चाँद और तारे
निकल आया उधर पूरब से सूरज जगमगाता सा
तू अपनी राह ले बादेसहर और मुझ को फुरसत दे
समा जाऊँ मैं झरनों और दरयाओं की बाहों में
जहाँ जाकर मुझे राहत का इक एहसास होता है।

[पानी की आवाज]

नारसिसस : यह कौन महबूब है सजीला ?
है जिसका चेहरा बहुत अनीला
कि जिसका मुखड़ा दमक रहा है
दमक रहा है चमक रहा है
ये निथरे पानी में चाँद जैसा।

नहीं कोई और ये नहीं है
ये मैं ही खुद हूँ मैं नारसीसस
ये चाँद मेरे ही रुख[1] का चश्मे में
गिर के गुलनार[2] हो गया है

1. चेहरा, मुखड़ा 2. लाल-सा जैसे बाग हा

नहीं नहीं भ्रम है ये मेरा
के मैं समझता हूँ मेरे दिल को
ये मीठा आजार हो गया है
ये मैं नहीं हूँ ये मैं नहीं हूँ
ये है किसी चाँद ही का परतव[1]
ये मेरी सूरत से मुख्तलिफ[2] है
ये मेरी सूरत से मुख्तलिफ है।

[सरापा]

ये है सरापा[3] उसी हसीं का
लटें ये बालों की काली काली
ये हैं अमावस की रात जैसी
इन्हीं अन्धेरी सी काली रातों
से एक शोला लपक रहा है
जबीं[4] का सूरज चमक रहा है
भवें हैं या के खिंची कमाँ हैं
के तीर यूलाईसस के हैं ये
घमण्डी दुशमन की ओर जाते
ये आँख जो मुझको देखती है
जो बन्द भी है जो है खुली भी
है ओस से साँझ की धुली भी
ये आँख दरअस्ल नरगिसी है
ये आँख जिसका हर इक इशारा
मेरे लिए हरफे[5] आग ही है
बयान हो जुल्फ[6] की हिकायत[7]
ए हुस्ने रुखसार[8] क्या बयाँ हो
ये हर तरफ एक रौशनी सी
ये हर तरफ एक चाँदनी सी
ये आरिजों[9] ही की इक दहक है
तजल्लियों[10] ही की दास्ताँ[11] है
तजल्लियाँ हैं कि बिजलियाँ हैं
ये ऊँचा कद
ये हसीन गरदन
और उस के गरदन की ये सुराही
कि जैसे आदम का रूप धारा
हो हुस्न के एक देवता ने

1. छाया 2. अलग 3. सर से पाँव तक महबूब के शरीर का वर्णण 4. माथा; 5. ज्ञान; 6. सर के बाल 7. कहानी 8. गाल 9. गालों 10. चमक 11. कहानी।

नहीं नहीं भ्रम है मेरा ये
ये शकल, सूरत ये प्यारी मूरत
मेरी नहीं है मेरी नहीं है
ये मैं नहीं हूँ ये मैं नहीं हूँ

ये आ गई है कोई हसीना
मेरे ख्यालों का रूप लेकर
वही हसीना वही अनोली
जिसे तराशा है मुद्दतों में
मेरी अपनी ही कल्पना ने
मिला दे इस से मुझे खुदाया
जो हुस्न चश्मे के सर्द[1] पानी
में गर्म अंगड़ाई ले रहा है
वजूद[2] से हुस्न की हरारत[3] के
सर्द पानी उबल रहा है
कि आब आतिश[4] में ढल रहा है

[आवाज]

इन्तेजार और अभी और अभी और अभी

नारसीसस : आज इस हुस्न को देखते देखते जिसने उस रोज चशमे के पानी में अपनी झलक मुझ को दिखलाई थी पहली बार

दो बरस हो गये
दो बरस
जो के दो सौ बरस के बराबर लगे
अब भी वह
नाजनीं[5]
महजबीं[6]
शोलारू[7] तुन्दखू[8]
एक ख्वाबे हसीं[9] की तरह दूर है
दिल मेरा आज भी
जैसे पहले था उतना ही मजबूर है
जाने कब वो मिले
यानी जिस के लिए
अपने जीवन को मैं
यूं लिये फिर रहा हूँ के जैसे काई
भीख का एक प्याला उठाए फिरे

1. ठंडा 2. उपस्थिति 3. गर्मी 4. आग 5. नार नवेली 6. चांद जैसी 7. शोले जैसा मुखड़ा 8. तीखी 9. सुन्दर सपना।

[आवाज]

इन्तेजार और अभी और अभी और अभी

नारसीसस : दस बरस बीस बरस तीस बरस भी गुजरे
आज भी मेरी मोहब्बत का वही आलम है
आज भी दूर बहुत दूर है वह जानेबहार
यानी वो प्यारी सूरत
जिसको इस चश्मे के पानी से उठाकर मैंने
अपने इस दिल के शिवाले में बिठाया था कभी
लेकिन अब और सकत मुझ में नहीं है बाकी
अब किसी मै के तलब मुझको नहीं है साकी
यह भी सच है कि मेरा इश्क बहुत मुशकिल था
आरजू यह है मगर इश्क रहे यह बाकी
ऐ खुदाओ मुझे हर दौर में खिलता रखना
जब बहार आये मुझे फूल की सूरत देना
लेकिन उस फूल की जो पहले खिलेगा सबसे
देख कर जिसको गुलस्तानों में मैदानों में
प्यार जो करते हैं वह याद मेरी ताजा करें

प्लूटार्क : नारसीसस भी मर गया आखिर
लेकिन अपनी उदास आँख की शक्ल
और दिल की जलन, थकन, हसरत
फूल की शक्ल में वह छोड़ गया
उसकी मिट्टी से फिर खिला वह फूल
फूल का रंग था सफेद और जर्द
उसकी खुशबू, सुगंध और महक
एक दुनिया में जा के फैल गयीं
नाम नर्गिस हुआ उसी गुल का
और यह फूल है बहार का दिल

अमरता का नुस्खा

दो कवि बहुत दिनों बाद मिले। पहले कवि कुछ दार्शनिक स्वभाव के थे। उन्होंने दूसरे से प्रश्न किया, "भाई, यदि अभी मेरा देहांत हो जाये, तो तुम क्या करोगे ?"

दूसरे कवि ने तपाक से उत्तर दिया, "दो-चार कविताएं, एक-दो संस्मरण और कुछ लेख तुम्हारे बारे में लिखकर छपवा दूंगा। तुम भी अमर हो जाओगे, मैं भी।"

तमिल उपन्यास

चम्पक का बगीचा

शाण्डिलयन्

□□

भारत की आत्मा गांवों में छिपी है गांधीजी कह गये। इसे माननेवालों, न माननेवालों के बीच में आज भी विचार-संघर्ष बना ही रहता है। चम्पक फूल की महक दूर से सुहानी होती है, हाथ में लेकर सूंघते रहने पर तैश आ जाता, नाक से खून भी निकल आता। वस्तु का आकर्षण दूर से जितना रंजक और असरदार होता है, उतना नजदीक में थोड़े ही हो सकता है।

'चम्पक तोट्टम' (चम्पक का बगीचा) भी ऐसा ही एक सुहावना और समृद्ध गांव है। मद्रास राज्य का तंजोर जिला 'धान की खान' की उपाधि से भूषित है। उसी जिले के गौरव-चिह्नों में उक्त गांव का भी स्थान है। मुश्किल से सौ-डेढ़ सौ घर जुड़ेंगे चारों वर्णों को मिलाकर (इधर आये दिन आर्य-आर्येत्तर के दो ही वर्ण गिने जाते हैं।) आसपास की बस्तियां उदार (उल्लू) रईस के पुछल्लुओं की तरह 'चम्पक तोट्टम' गांव की शोभा बढ़ाती थीं।

गांव की समृद्ध हरियाली का अधिकांश श्रेय शिवशंकरम् पिल्लै को है। वे पुरानी परि-पाटियों के अभिभावक होते हुए भी, नयी रोशनियों से आंख मूंद लेनेवाले भी नहीं रहे। बी० ए० पास हैं, कृषि विज्ञान की नयी उपलब्धियों से परिचित एवं प्रयोक्ता भी हैं।

इस गांव को पहुंचने के रास्ते ऐसे हैं कि बस पूछिये नहीं। टेढ़े-मेढ़े निरी मिट्टी के बर-सात में दलदल से भरपूर। फिर भी दूर से व्यापारी और यात्री उस गांव को आया करते थे। उस दिन एक अजीब दृश्य गांववालों को वहां देखने को मिला। एक मोटर कार को चार-पांच आदमी जोर लगाकर ढकेल रहे थे।

शिवशंकरम् पिल्लै की इकलौती बेटी मोहनी जो घर के सामने रंगोली पूर रही थी, अपना काम छोड़कर तमाशाई बन गयी। मद्रास में रहकर मैट्रिक तक पढ़ चुकी है। शहरी नाज-नखरे उसे छू न पाये। ग्रामबाला बनना उसे पसंद था। फूहड़ नहीं थी। अंग्रेजी शिक्षा तथा शहरी संस्कृति की छाप लुक-छिप थिरकती थी। यौवनयुक्त गदराते हुए मोहक अंग, चमकता रंग, सुन्दरता की एक बेहतरीन 'मॉडल' थी वह।

मोटर के लिए नहीं, उसके मालिक के लिए मोहनी के मन में कुतूहल उमड़ा। एक सुन्दर स्वस्थ युवक जो शहरी आदमी दीखता था, मोटर चला रहा था। 'यह कौन इधर आया है'—यह जिज्ञासा थमी नहीं। घर के नौकर मारिमुत्तु से जो वहां से गुजर रहा था, सीधे पूछ बैठी, "यह कौन हैं नये साहब, इधर भूल पड़े हैं ?"

"तुम नहीं जानतीं, छोटी मालकिन ? यह हमारे गांव में बसने आये हैं। उस मंजिल-वाले पुराने मकान को आप ही ने मोल लिया है, ये वहीं ठहरनेवाले हैं।"

मोहनी चौंक गयी। उसको इतना अचंभा हुआ कि कोई अद्‌भुत-असंभव और बुरी बात हो चुकी हो। वह हड़बड़ा कर पूछ बैठी, "क्यों मारिमुत्तु ! मंजिलवाले पुराने मकान को इन्होंने जानबूझकर खरीदा है ?"

"कोई जानकार उसे कहीं खरीदेगा ? मद्रास में ही गुमसुम रजिस्ट्री कर दी गयी है। अच्छा उल्लू मिल गया—सो मकान के भागीदार क्यों चूकते ?"

मोहनी को उस मकान के हिस्सेदारों के प्रति घृणा हुई और उस युवक के प्रति दया भी। "इस भोले आदमी की उस मकान में रहते कैसी दुर्गति होगी—भगवान जाने ! पिशाच का आवास है, उधर आदमी चैन से जी कैसे सकता है।" यह कहते समय मोहनी की मोहक देह पल-भर के लिए कांप उठी।

मारिमुत्तु ने अपने नौकर को टोका, "अरे तुम भी कैसी बात कर रहे हो ! हमारे गांव में आनेवाले हमारे मित्र हैं। उनका खयाल रखना हमारा कर्त्तव्य है। उनको कुछ हो जाये, तो उसका गम हमें भी होगा, भूलो मत।"

"तब तो मैं अभी जाकर उस साहब को रोक दूं कि अजी आप इस भूतालास मकान में घुसिये ही नहीं, अभी चलूं ?" यह सुनकर मोहनी भी मुस्करा गयी।

इतने में मोटर घर के सामने आ गयी। मोटर से उतरकर वह युवक मोहनी की ओर आया। सुन्दर, स्वस्थ, भावुक युवा था। मोहनी संकोच से पीछे हट रही थी कि आगन्तुक ने कहा, "अजी आप कुछ मदद कर सकती हैं ?"

कुतूहल के साथ मोहनी उस युवक तो ताकने लगी। जीभ उठी नहीं, क्या बोलती ? आगन्तुक ने दुहराया, तो मोहनी ने सिर हिला दिया, "जी हां।"

"घर में आपके पिताजी हैं ?"

"जी नहीं।"

"और कोई…?"

"बुआजी हैं, नहाने गयी हैं, अभी आ जायेंगी।"

"शिवशंकरम् पिल्लैजी का यही घर है न ?" पहले ही पूछ लेना चाहिए था। इस भूल का पछतावा युवक के चेहरे पर दौड़ आया। जवान लड़की को सामने पाकर संतुलन खो बैठना—विशेषकर युवक को—सहज ही है। मोहनी मुस्कान बिखेरती हुई "हां" बोली।

"मुझे एक मोटी रस्सी की जरूरत है। मेहरबानी करके दिलायेंगे, तो मेरी मोटर मकान तक पहुंच जायेगी।"

इतने में मोहनी की बुआ चेल्लम्माल वहां आ पहुंचीं। गीले कपड़े लपेट रही थीं, कमर में पानी-भरा पीतल का घड़ा था। खड़ी-खड़ी युवक को स्नेह से देखने लगीं, शहर में रह चुकी हैं। एकदम तुम कौन हो ? पूछ बैठना नागवार लगेगा। इसलिए नजर से ही पूछ रही थीं मोहनी से।

"बुआजी, यही हैं, उस मंजिलवाले मकान के नये मालिक, आप वहीं निवास करेंगे।"

"बात यह है ! क्यों भाई, …" कुछ कहने को चाहा, इतने में स्वयं संभल गयीं, "नये-नये आये हैं। इन्हें द्वार पर खड़ा करके बोल रही हो, अच्छा नहीं किया। …अंदर आ जाइये थोड़ी देर बैठिये, मैं अभी कपड़ा बदल के आ जाऊंगी।"

"नहीं मांजी, मुझे अब फुर्सत नहीं। एक मोटी रस्सी चाहिए। इसीलिए आया हूं।"

"मोहनी, पिछवाड़े के गोठ में जाकर एक रस्सी निकालकर इनको दे दो।" बुआजी अन्दर चली गयीं। मोहनी युवक को साथ लेकर पिछवाड़े की ओर गयी।

एक छोटी-सी सीढ़ी पर चढ़कर मोहनी ने रस्सी उतारी। उसकी आंखें युवक पर फुदक रही थीं। उसने कई प्रश्न पूछने चाहे, पर शील-संकोच ने उसकी जीभ थाम ली। रस्सी लेने को पैर उठाये, तो फिसलकर नीचे गिर पड़ी। इत्तिफाक से वह युवक सीधे नीचे खड़ा था। झट हाथों में उसे भर लिया। मोहनी लज्जा, भय और अवर्ण्य आनन्द से कल्लोलित हुई। पर-पुरुष का प्रथम स्पर्श था, पुलकित हो उठी।

"क्षमा कीजिये, मेरे ही कारण आपको यह तकलीफ हो गयी।" युवक ने सहज ही कहा।

"कोई बात नहीं। आप यह रस्सी ले लीजिये।"

"आपका नाम मोहनी है—नाम के अनुरूप रूप पाया है। आपके बारे में मैं पहले ही सुन चुका हूं—मद्रास में।"

"ऐं! यह बात है। किसकी यह मजाल थी?"

"वही, आपके पिताजी के मित्र राजपार्ट रामलिंगम जब वह मकान बेचने आये थे, बहुत-सी बातें कह गये।"

"यह नहीं कहा, वह मकान अमंगलकारी है, उसकी छत में पिशाच का निवास है। रात के समय अजीब आवाजें वहां से निकलकर राह चलनेवालों को डराती हैं?"

"वह भी कहा। पर मैं उन बेहूदा बातों पर विश्वास नहीं करता। मुझे किसी भूत या पिशाच से कोई डर नहीं है। मनुष्यरूपी पिशाचों से दूर रहना काफी है।"

मोहनी को उस युवक के धीर स्वभाव पर विस्मय हुआ और आशंका भी। इतने में बुआजी की आवाज आयी। मोहनी विदा लेकर घर के अन्दर चली गयी। अब उसका मन—वहीं जाने—उछल रहा था, मीठे विचारों की झनकें उठ रही थीं।

शिवशंकरम् पिल्लै खेती-बारी की देख रेख कर शाम को घर वापस आये। उनको काश्तकारी एवं बागवानी में जितनी आसक्ति थी, उतनी और किसी पर नहीं थी। रात का खाना पूरा होने पर वे सोने गये। उनकी बहन चेलम्माल पास आयी। वह विधवा थी। बाल-बच्चा नहीं था। एकमात्र संबल मोहनी थी। मोहनी की माता की असामयिक मृत्यु हो गयी। घर का जिम्मा उसी पर आ गया। उसे चिन्ता घुन रही थी, इस बिटिया का हाथ जल्दी रंग लेना है, अच्छा अवलंब ढूंढ़कर इसे सौंप देना चाहिए। पर पिल्लैजी को इसकी कोई फिक्र नहीं थी—यही चेल्लम्मा की शिकायत थी। आज भी यही शिकायत करने आयी थी।

"भाईजी, तुम क्या सो गये हो?"

"क्या बात है, बहन?"

"वही, मोहनी की बात, तुम तो बेफिक्र रहते हो।"

"ऐसी बात नहीं। मैंने मोहनी के लिए वर ढूंढ़ लिया।"

"कौन है वह?"

"हमारे गांव के मीरासदार रामलिंगम पिल्लै का पुत्र।"

चेल्लम्माल का चेहरा मुरझा गया। "क्या उस नाटकिये के बेटे के लिए अपनी बिटिया को दूं। नहीं, नहीं। इस नालायक मरदूद को मोहनी कभी न ब्याहेगी।"

"राजपार्ट रामलिंगम के यहां क्या कमी है? जायदाद है, इकलौता बेटा है। हमारे खेत के पड़ोस में ही उसके खेत हैं। दोनों परिवार मिल जाने से इस गांव के अधिकांश खेत

हमारी मोहनी की सम्पत्ति हो जायेंगे।''

''नापसन्द वर से शादी करके आजीवन दुख मोल लेना बुद्धिमानी नहीं। मैं कभी राज-पार्ट के बेटे से मोहनी को ब्याहने नहीं दूंगी। फूलमाला को बंदर के हाथ कौन जान-बूझकर सौंप देगा ?''

पिल्लै ने इस बात को आगे बढ़ाना नहीं चाहा। बहन की जिद से परिचित थे। 'आगे देखा जायेगा' यही निर्णय वे हर समस्या पर अंततः कर बैठते। अब भी उसी लीक की पनाह ली।

एक सप्ताह बीत गया। गांव-भर में उस मंजिलवाले मकान के मालिक युवक के बारे में ही चर्चा चल रही थी। तरह-तरह की अफवाहें मनगढ़न्त बातें फैली थीं। इस 'प्रोपैगैण्डा' के स्वत्वाधिकारी हैं, वराहाचारी, शिवजी के मंदिर के पुजारी कथावाचक उत्तरादि, सुनार तुरेसामि और आर्य-आर्येत्तर विभाजन (विद्वेष) आन्दोलन के सदस्य अलकण्णल आदि हैं।

वराहाचारीअवकाश प्राप्त पुलिस डिप्टी कमिश्नर हैं। पेशे के समय--भगवान जाने—क्या-क्या गोलमाल कर चुके हों, अब वृद्धानारी पतिव्रता बन गये हैं। शरीर के बारहों भागों पर तिलक धारण करते, हरिनाम संकीर्तन प्रतिदिन करते, कट्टर वैष्णव हैं, शिवजी से उनको यद्यपि चिढ़ थी, परन्तु शिवजी के पुजारी से उनका साझा था। दोनों रोज ताश खेलने बैठते, बैठक जम जाती। खेल के ही नयी-पुरानी चर्चाएं हो जातीं। वे स्वभाव से अच्छे हैं। रुपये के मामले में पक्के हैं, दया-माया दिखाने की बात तो दूर, वसूली के लिए अशिष्टता की हद भी कर बैठते। ब्याज के बिना रुपया उधार नहीं देते। कट्टर आस्तिक होने पर भी कई अशास्त्रीय प्रवृत्तियां किया करते थे। यही धारणा थी उनकी, हमारे पुरखे शास्त्रकारों ने अज्ञानवश कई उपयोगी एवं कालोचित प्रवृत्तियों को शास्त्रों में नहीं लिया। अगर वे आज होते, जरूर उन्हें शास्त्रसम्मत साबित करते।

वराहाचारी के साथी पुजारीजी को रुपये-पैसे का मोह नहीं था। अभाव से विराग होना सहज है। पर उनकी क्रूर आकृति सबके लिए डरावनी चेतावनी थी। सोचते कम, बोलते अधिक, दूसरों के हित-अहित की परवाह उनको नहीं थी। बने-बनाये को बिगाड़ने में पुजारीजी को विशेष रुचि थी। उनकी आकृति और वाणी से डरनेवालों में अलकण्णल भी एक थे, तो औरों की क्या औकात है ?

अलकण्णल यद्यपि ईश्वर, धर्म, वर्णव्यवस्था, कुलप्रथा, अंधविश्वास आदि के घोर विरोधी थे और द्रविड़ कषकम के सदस्य थे, फिर भी मानवीय सभ्यता एवं नेकनीयती के पक्के अनुयायी थे। आर्यों (ब्राह्मणों) तथा आर्यभाषा (संस्कृत) एवं आर्य-संस्कृति को तमिलनाडु से भगा देना चाहिए—यही उनका नारा था। संस्कृत भाषा से उनको इतनी चिढ़ थी कि अपने निजी नाम 'सुन्दरनाथ' को छोड़कर, उसके ठेठ तमिल अनुवाद 'अलकण्णल' नाम को अपना लिया। मंचों में लच्छेदार भाषा में, प्रास-अनुप्रास के साथ लेक्चर झाड़ने का उनका विशेष नैपुण्य था। तमिलदेव तिरुक्कुरल से सभी विषयों के लिए उद्धरण देना उनका तकियाकलाम-सा बन गया था।

कथावाचक उत्तरादि तमिल के अच्छे विद्वान थे। कम्ब रामायणम् (तमिल महाकाव्य) का प्रतिदिन प्रवचन किया करते थे। कंठ भी उनका बुलन्द था। आसपास की गलियों में उनके कंठस्वर टकराकर गूंज उठते। कभी-कभी कथावाचन के बीच में ही, गपशप की फुलझड़ियां भी उड़ाने में वे चूकते नहीं। शायद इसी आकर्षण के लिए कुछ बूढ़ी औरतें और वराहाचारी पुजारी आदि गण्यमान्य व्यक्ति कथावाचक के घर कथाश्रवण के लिए आया करते। अलकण्णल

को उन तीनों से भारी चिढ़ थी, पर सीधे कोई विरोध नहीं कर सकते थे। वराहाचारी के पास एक भारी-भरकम 'अलशेसियन' कुत्ता था, पुजारीजी की डरावनी आंखें उनके लिए बस, एक चुनौती थीं। कथावाचक का हट्टा-कट्टा शरीर, उनके छेड़ने के साहस को पस्त कर देता। अतः अलकण्णल लाचार होकर 'बिल्ली से वैर होने पर भी घर में वास' की तरह उस गांव में रहते थे।

अब उन लोगों के लिए मंजिलवाले मकान के मालिक नवागन्तुक युवक विशेष आकर्षक बन गये। सभी अपने-अपने दृष्टिकोणों में उसकी टीका-टिप्पणी करते थे। उस युवक का नाम सुन्दर था।

मोहनी बुआजी की अनुमति लेकर एक दिन हाट देखने गयी। साइकिल पर चली। गांववालों को शुरू में एक लड़की का इस तरह बेधड़क साइकिल चलाना अजीब लगा, कुछ नजरों में नागवार भी। पर बाद को आदत पड़ जाने से वह दृश्य मामूली हो चला।

मंजिलवाले मकान से होकर ही वह रास्ता चला। मोहनी कुतूहल से उस मकान को ताक रही थी। सुन्दर का साया भी नहीं दीखा। पर छत पर दो आदमियों को बैठे-बैठे बातचीत करते देखा। युवती का मन धड़क रहा था। आंख फेरकर तेजी से चलने लगी। इतने में पीछे हाय-हाय का नारा सुनायी पड़ा। खेत-खलिहानों में से कई किसान सड़क की ओर दौड़े आ रहे थे। मोहनी ने पीछे मुड़कर देखा, तो उसके होश उड़ गये। एक मत्त सांड़ साइकिल की ओर दौड़ा आ रहा था। सींग नीचे किये उसका आक्रोशपूर्ण आक्रमण देख कोई भी पास आने की हिम्मत न कर सका। पीछे पता चला कि वह सांड़ अलकण्णल के पार्टी-पोशाक काले कुर्ते को देखकर भड़क उठा है। वे भी खेत की मेंड़ पर खड़े थे। जल्दी सड़क की ओर आकर किसानों से कहा, "जल्दी चलो, कोई जाकर सांड़ को पकड़ो; नहीं तो लड़की का बुरा हाल हो जायेगा।"

पर साहस कौन करे ? किसानों में से किसी ने ताना कसा, "आप लीडर साहब ही क्यों न हिम्मत करते। पामरों का पथप्रदर्शन करने आ जाते, तो ऐसे आपद् के समय में पीछे क्यों हटते ?"

अलकण्णल मन मसोसकर और उस उद्दण्ड को गालियां बककर पीछे ही रह गये। इतने में सांड़ ने हुंकार भरते हुए साइकिल को जोर से ढकेल दिया। मोहनी चीखती हुई दूर जाकर गिर पड़ी, मीलपत्थर पर उसका सिर टकरा गया। खून बह चला, बेहोश हो चली।

सुन्दर दौड़ा आया। साइकिल को उठा लिया। क्रुद्ध सांड़ उस पर झपटने लगा, तो साइकिल के सहारे उसे रोका और उसी के आघात में सांड़ को थका दिया। फिर रस्सी लेकर उसे बांध दिया। इतने में भारी भीड़ जम गयी। सब तमाशाई रहे, कोई भी मदद करने आगे नहीं बढ़ा। उसे उठाकर अपने मकान ले गया। खून पोंछकर पट्टी बांधी और बक्स से कोई दवा लाकर पिलायी। उसकी आज्ञा पाकर नौकर एक कप गरम काफी तैयार कर लाया। मोहनी उसे पीकर कुछ स्वस्थ हुई, उसकी आंखें खुलीं। उसको इतना ही स्मरण था कि एक अड़ियल सांड़ उसके पीछे दौड़ा आया और उसके आक्रमण से वह साइकिल से दूर फेंक दी गयी थी। बाद की घटनाएं उसकी बेसुधी में घट चुकी थीं।

मोहनी के पिताजी और बुआ दोनों ने जब यह खबर सुनी कि मोहनी सांड़ के आघात से बेहोश हो चली और उसके सिर पर से खून निकल रहा है, तो उनपर बिजली-सी गिरी। वे दौड़ आये। बुआ हड़बड़ाकर मोहनी से लिपट गयी। पिल्लैजी सजल नेत्रों से पुत्री को देख रहे थे।

अब तक मोहनी का होश लौट आया। सुन्दर की मदद से ही मोहनी बच सकी—यह भी वे जान चुके। तभी सब लोगों को ज्ञात हुआ, सुन्दर एम० बी० बी० एस० परीक्षा में उत्तीर्ण डाक्टर है। पिल्लैजी गद्‌गद हो गये—कृतज्ञता प्रकट करने के लिए ठीक तरह से शब्द उनके मुंह से नहीं निकले। बुआजी गद्‌गद हो बोलीं, "राजा बेटा, तुम्हीं ने बिटिया की प्राणरक्षा की। आगे इसका इलाज करना भी तुम्हारे हाथ में है। यह न समझो, तुम हमसे गैर हो।"

सुन्दर का दिल भी पसीज गया। "मांजी, मेरी माता नहीं हैं। मैं आप ही को अपनी माता मानता हूं। मोहनी जल्दी ही तंदुरुस्त हो जायेगी। आप निश्चिंत रहिये। मैं रोज आकर इसका इलाज करता रहूंगा।"

पुत्रहीना चेल्लम्माल का हृदय वात्सल्य से भर गया। उसी क्षण उसने निश्चय कर लिया, क्यों न हो, हमारी मोहनी इसी डाक्टर की पत्नी बनेगी। अच्छी जोड़ी है। फिर बात-चीत में पता चला कि सुंदर के पुरखे इसी चम्पक तोट्टम गांव के निवासी थे और यह घर भी संभवतः उन्हीं का था। पिल्लैजी को बड़ी सांत्वना मिली, युवक के कुल और धर्म के बारे में विचारने की जरूरत ही नहीं है। अपने गांव का आदमी है, जाति से भी परे नहीं है। हां, भगवान् चाहेंगे, तो हमारी बेटी इसी का हाथ ग्रहण करेगी।

भीड़ में राजपार्ट रामलिंगम और उनका बेटा वरदन भी थे। वरदन मोहना को ही घूर-कर देख रहा था। उसके मन में असूया की लपटें इतनी तेज उठीं कि अगर बस चले, तो सुन्दर को वहीं कत्ल कर दे। लोगों को सुन्दर की बहादुरी का बखान करते सुनकर उसके तन-मन जलने लगे। करीब यही हाल उसके पिता राजपार्ट का भी था। वे ग्रामीण रंगशालाओं में अभिनेता रह चुके हैं, अधिकतर राजा का पार्ट ही लिया करते। उसी वेष में बोलने का काम और तड़क-भड़क का अधिक मौका मिलता। अल्पसंतोषी थे, अनायास ख्याति पाने में और दूसरों की योग्यता और क्षमता की अवहेलना में तुले हुए थे। अरसे का अरमान था उनका कि पिल्लैजी की इकलौती बेटी मोहनी को अपनी पुत्रवधू बना लेवें, तो गांव की अधिकतर सम्पत्ति उसी के अधीन आ जाती। उस योजना में जो भी बाधा डाले, उसे हरगिज नहीं सहेंगे। यही प्रतिशोध सुन्दर के प्रति अब उनका था।

सुन्दर के इलाज से मोहनी का जख्म भर गया और वह पूर्ण स्वस्थ हो गयी। पर उसका मन बेकाबू हो चला। सुन्दर को देखे बिना उसको चैन नहीं पड़ता। दिन-रात उसकी चिन्ता, मीठी कल्पनाएं उसी के आसपास मंडरातीं। आखिर यह डाक्टर भी कोई जादूगर तो नहीं होगा? क्यों इस प्रकार एक अबोध कुंआरी को बावरी बना दिया। उसके शिष्ट-संयत व्यवहार ही मोहनी के लिए अधिक आकर्षक थे। पता नहीं चला, ऐसा ही हाल सुन्दर का भी होगा कि नहीं। बातें करता मीठी-मीठी, पर एक स्नेही डाक्टर की तरह। उसकी नजर में स्नेह था, पर साथ ही कोई प्रगाढ़ वितृष्णा भी दीखती थी। पूछने की हिम्मत मोहनी को नहीं हुई कि यह विरोधाभास क्यों? कभी-कभी खोये-खोये से सुन्दर को बैठते दीखती थी। पगली यही विचारती कि अब लाला मेरे खेवे में आ रहे हैं, इसी का प्रतिफल है यह आत्मविभोर होना—आदि-आदि।

चिकित्सा को पूरा हुए एक सप्ताह बीत चला। सुन्दर मोहनी को देखने नहीं आया। मोहनी ने घर के नौकर को भेजा, तो जवाब आया, इलाज पूरा हो गया, मालकिन चंगी हो गयीं, अब मुझे आने की क्या जरूरत है? इधर हमें ढेरों काम पड़े हैं, फुरसत नहीं है, इधर दर्शन देने-पाने की। अरे निर्दयी! तुम यह नहीं सोचते कि एक स्नेहमयी युवती का विवश मन कितना बौखला उठता है।

नारी का मन कब तक मान किये बैठ सकता? दो-तीन दिनों के बाद मोहनी गाय, बक-

रियों के रेवड़ को देखने का बहाना करके मंजिलवाले मकान की ओर गयी। दरवाजे पर सुन्दर का नौकर था। पूछा, तो जवाब मिला, मालिक शहर गये हैं, कल ही आयेंगे। हताश होकर मोहनी लौटी। सड़क के कोने में आकर उसने मुड़कर देखा। छत पर बत्ती की रोशनी थी और दो आदमी आमने-सामने बैठकर बातें कर रहे थे। उनमें एक सुन्दर था, दूसरा डरावनी आकृति का लम्पट-पियक्कड़-सा दिखा। इस दृश्य को देखते ही, मोहनी मानो आसमान से गिर पड़ी। सुन्दर के प्रति कई संदेह उठे। उन्होंने क्यों मकान में रहते हुए भी नौकर से झूठ कहलाया? घर की छत में जहां पिशाच का निवास है, इनके बैठने की क्या जरूरत है? तरह-तरह की आशंकाएं, शक और वितृष्णा उसे घेर गयीं। भारी मन लेकर वह अपने घर लौट आयी। भूखे ही लेट गयी। बुआजी के बार-बार पूछने पर भी कोई जवाब न दिया।

मोहनी को मर्माहत दुख होने का केवल सुन्दर की मात्र उपेक्षा-वृत्ति ही कारण नहीं थी, दूसरा कारण भी था। वह अप्रत्याशित अपमानजक घटना थी। रात को सुन्दर के मकान से निराश होकर मोहनी लौट रही थी। आम के बाग की पगडंडी से आ रही थी। चांदनी का मद्धिम प्रकाश और पेड़-पौधों की बिखरी साया धीरज और भय के प्रतीक से दीख पड़ रहे थे। बाग की मोड़ पर आयी तो एक क्रूरकाय आदमी ने झट उसका हाथ पकड़ लिया और कर्कश स्वर में कहा, "ऐ छोकरी खड़ी रह! चिल्लाओगी, तो गला घोंट दूंगा—खबरदार!"

मोहनी हक्की-बक्की रह गयी। गांव के लिए यह असाधारण घटना थी। आधी रात तक बच्चा भी अकेला आ-जा सकता, कोई डर नहीं था। आज यह आफत कैसे आ पड़ी? मोहनी संभलकर बोली, "तू कौन है? हाथ छोड़ो, नहीं तो चिल्लाकर सारा गांव इकट्ठा कर दूंगी।"

"तुम्हीं न उस डाक्टर की चहेती हो? तुम्हें क्या हो गया, जो उसके पीछे पड़ती हो? मैं तुम्हें उठा के ले चलता हूं, देखूं तुम कैसे उसकी औरत बनती हो?"

उस बदमाश के मुंह से ताड़ी की बू निकल आयी। उसकी आखें लाल थीं। घनी मूंछ, विकराल चेहरा, कर्कश स्वर, निर्लज्ज, धूर्तता हर बात से टपक रही थी। मोहनी को तत्काल मालूम हो गया, यही नरपिशाच थोड़ी देर पहले सुन्दर के मकान में, उसके साथ छत पर बातें कर रहा था। यह क्यों वहां गया? इस नीच आदमी के साथ उनका क्या वास्ता हो सकता है? यह अजनबी मुझे क्यों धमका रहा है? मेरी हत्या तक करने की हिम्मत इसे कैसे और क्यों आयी?

वह धूर्त मोहनी से बलात्कार करने लगा, तो मोहनी जोर से चीख उठी। उसकी गूंज बाग-बगीचों को पार कर प्रतिध्वनित हो उठी। बदमाश ने उसका मुंह बन्द करने की कोशिश की, तो वह और जोर से चिल्ला उठी। तब एक जबर्दस्त हाथ ने, उस बदमाश के मुंह पर जोर का तमाचा मारा, तो वह तिलमिला उठा। मोहनी उसकी पकड़ से अलग हो गयी। वह नीच संभल भी नहीं पाया और जोर के मुक्कों से आगन्तुक ने उसे मृतप्राय बना दिया। पियक्कड़ का होश कब तक टिकता वहीं चित होकर गिर पड़ा,। मोहनी ने अपने मददगार को एहसान से देखा, तो सामने अलकण्णल खड़े थे। गिरते-गिरते उस बदमाश ने कहा, "भाई, तुम यहां आ गये ओफ···"

मोहनी की चिल्लाहट सुन आसपास के लोग दौड़ आये। अलकण्णल ने मोहनी से विनती की, बेटी, यह मेरा चचेरा भाई है। मद्रास में रहता है। सारी दुर्जनता इसमें आ गयी है। ऐसा कोई नीच काम नहीं, जो इसने न अपनाया हो। बुरा पेशा है—भडुवागिरी, ऊपर से चोरी, डकैती, पाकेटमारी और शराबखोरी भी। इधर न जाने, कैसे आ गया है? तुम मेरा मान रखो, लोगों से यह न बता दो कि यह मेरा भाई है और इसने तुमसे बलात्कार करने की

कोशिश की। हम दोनों के लिए यह अपमान की बात होगी। तुम समझदार हो, मेरा मान रखना तुम्हारे हाथों में है।"

भीड़ जम गयी। तरह-तरह की बातें हुई। मोहनी ने यही बात दुहरायी, "इस बेहोश पियक्कड़ से, जो इधर पड़ा था, मैं टकराकर गिर पड़ी, तो डर के मारे चिल्ला पड़ी। मैंने सोचा कि कोई प्रेत इधर पड़ा हुआ है।

जो हो मोहनी के प्रति तरह-तरह की अफवाहें फैलने लगीं। यह भी फैल गया कि मोहनी डाक्टर से मिलने, रात की वेला में अकेली उनके मकान तक हो आयी। इसके पहले एक-दो बार तालाब के पास सुन्दर और मोहनी को बातें करते हुए कुछ लोगों ने देख भी लिया फिर क्या था ? शक्की देहातियों के लिए और क्या चाहिए ?

शिवशंकरम् पिल्लै और उनकी बहन चेल्लम्माल का संतोष अल्पायु हो चला। उनको खुशी थी कि मोहनी के लिए योग्य वर डाक्टर सुन्दर मिल गया। अब उनको मालूम हुआ कि सुन्दर विवाहित है और उसकी पत्नी एक मामूली सिने अभिनेत्री है। दोनों में मनमुटाव हो जाने से, वह इधर गांव में आकर अज्ञातवास कर रहा है। वह बदमाश जो मोहनी को बदनाम कर गया, सुन्दर का ससुर है। इस मर्मभेदी खबर से पिल्लैजी के घर भर में मातम छा गया। इस भंडाफोड़ का प्रमुख श्रेय राजपार्ट को था। उसके मन में विद्वेष का लावा इतना धधक उठा कि उसने सोचा कि सुन्दर का किसी न किसी प्रकार सर्वनाश करके ही दम लेंगे।

अब तक गांव में मोहनी और सुन्दर का विवाह पक्का-सा हो गया। अब यह वज्राघात कैसे मोहनी से सहा जायेगा। चेल्लम्माल तो अधमरी हो गयीं। मानधनी पिल्लैजी की हालत भी बुरी थी। ऐसी स्थिति की ही राजपार्ट को प्रतीक्षा थी। वे स्वयं आकर पिल्लैजी को सांत्वना देते हुए बोले, "आप चिन्ता छोड़िए। आपकी बेठी, हमारी भी बेटी है। गांव की मान-मर्यादा पर हम सबका का साझा है। मैं आपकी बेटी को अपनी पुत्रवधू बना लेने को तैयार हूं। उस पर कोई कलंक न हुआ और न होगा भी। मैं जानता हूं कि वह खालिस सोना है।"

पिल्लैजी ने सजल नेत्रों से, कृतज्ञता से दबे हुए राजपार्ट के हाथ पकड़ लिये। रुंधे कंठ से बोले, "आप मेरे लिए देवता के तुल्य हैं। ऐसे संकट के समय में कौन मुझे उबारने आता। आपने उदारता का आदर्श स्थापित किया। मैं इस उपकार को आजीवन नहीं भूलूंगा। जितनी जल्दी हो सके, आपके सुपुत्र वरदन और मेरी बेटी का विवाह हो जाना चाहिए। आप जो भी दहेज आदि में मागेंगे, देने को तैयार हूं। मेरी एक ही संतान है, सारी सम्पत्ति उसी की होगी।"

"आप भी क्या बोलते हैं। मैं क्या गैर हूं या अजनबी हूं। दहेज-वहेज की बात छोड़िए। शुभ कार्य शीघ्र ही सम्पन्न हो जाय यही मेरी कामना है।" राजपार्ट ने मीठी बात कह दी। उनको मालूम है, अनायास ही पिल्लैजी की सारी सम्पत्ति उनके घर आ जायेगी।

कहने की जरूरत नहीं कि मोहनी का क्या हाल होगा। उसने एक दिन छिपे-छिपे सुन्दर से मुलाकात की और फैली खबर के बारे में पूछा। बात सच निकली। सुन्दर ने मान लिया, "एक धूर्त ने एक सुन्दर लड़की को अच्छे कुल की बताकर मेरे मत्थे मढ़ दिया। प्रेम दीवाना मैंने उसके साथ संबन्ध रख लिया। बाद को ही मालूम हुआ कि वह मामूली सिने अभिनेत्री है और ऐसे ही लोलुप दीवाने अमीर युवकों को भुलावे में डालकर फंसा लेना उसका पेशा था। मुझसे वह आदमी और वह लड़की दोनों एँठकर और धमकाकर कई बार मोटी-मोटी रकमें वसूल कर चुके हैं। उनसे बचने के लिए मैं अपने पुरखों के इस गांव में आ गया। फिर भी उनसे पिण्ड न छूटा।"

"आपने यह बात मुझसे पहले ही क्यों नहीं बतायी ? मुझे बदनाम करा देने से आपने क्या लाभ पा लिया ?" मोहनी रुआंसी हो गयी।

सुन्दर ने कहा, "मोहनी, मैं तुमको हृदय से चाहता हूं। पर क्या लाभ ? मेरी दशा ऐसी गयी-बीती हो चली, तो मैं कैसे तुमसे शादी कर लेने का साहस करूं। इसीलिए शुरू से ही, मैं अपनी ओर से खिंचा ही रहा। तुम अधीर होती रहीं, इसीलिए जगहंसाई की नौबत आ गयी। मैं अब भी इसी कोशिश में हूं, जैसा भी हो, तुम्हारे जीवन को सुखी और श्रेष्ठ बनाये रखूं। तुम मेरी चिन्ता छोड़ो और मुझे भुला दो। तुम निश्चित वरदन से विवाह कर लो। इस अभागे की याद तक तुम्हें चैन की नींद नहीं सोने देगी। एक लहर आयी, तट को चूमकर चली गयी, यही समझो। मेरे हृदय में केवल तुम्हीं रह सकती हो, रह रही हो और हमेशा के लिए रहोगी भी। अच्छा, चलो। ..."

मोहनी सिसकती हुई घर वापस आ गयी। इस वार्तालाप को राजपार्ट ने छिपकर सुन लिया और बात-बात में गांव-भर में फैल गयी वह खबर।

पिल्लैजी की स्थिति और शोचनीय हुई। उन्होंने एक ही सप्ताह के बीच में ही वरदन और मोहनी की शादी करा देने की ठान ली। शुभ मुहूर्त निश्चित हुआ, खूब तैयारियां होने लगीं।

शादी के पहले का दिन था। एक बुरा समाचार गांव में फैला, सब कहीं उसीकी चर्चा थी। वराहाचारी अपनी पुरानी पोशाक पहनकर थाना गये—बिना बुलाया पाये ही। उनकी धारणा थी कि आज भी उनकी धाक पुलिस विभाग में जम सकती है। मोहनी मूर्छित-सी हो गयी। पिल्लैजी के घर में फिर मातम-सा छा गया। राजपार्ट तो पागल हो उठे और उनकी पत्नी ने रो-रोकर गांव-भर को इकट्ठा कर लिया।

बात यह थी, कि पुलिस उस दिन सबेरे आकर सुन्दर और वरदन दोनों को गिरफ्तार करके थाने में ले गयी। पिछली रात को, तालाव के किनारे झाड़ियों की आड़ में एक जवान औरत की लाश पड़ी थी। उसके निकट हाथ में एक पिस्तौल लिये सुन्दर खड़ा था। पिस्तौल दागने की आवाज सुनकर दो-तीन पुलिस के सिपाहियों और दसों ग्रामवासियों ने वहां दौड़कर देखा, तो सुन्दर को रंगे हाथ पकड़ लिया। उसने कोई प्रतिवाद नहीं किया, स्वीकार किया, "मैंने ही इस जवान औरत को गोली मारी। यह मेरी रखेल थी। मनमुटाव बढ़ा, तो आवेश में आकर पिस्तौल चला दी।"

थाने में आकर पिस्तौल की जांच की गयी, तो वह सुन्दर की न थी, राजपार्ट रामलिंगम पिल्लै की थी। उस रात को पिस्तौल की आवाज निकलने के थोड़ी देर बाद, तालाब से वरदन को बेतहाशा भागते हुए किसी ने देख लिया। सबूत पक्का था। इसलिए वह भी कैद हुआ।

पुलिसवालों को इस पेचीदा मुकदमे में बहुत दिमाग लड़ाना पड़ा। वराहाचारी ने गांव में धाक जमा देने के लिए राजपार्ट को ढाढ़स बंधाया कि मैं तुम्हारे पुत्र को बेदाग बचा लाऊंगा, पर अफसोस की बात है, थाने में उसकी एक भी न सुनी पुलिस सुपरिटेंडेंट ने। पुजारी और कथावाचक दोनों ने दिल भर के वराहाचारी की खिल्ली उड़ायी और पिल्लैजी तथा राजपार्ट से अपने-अपने छिपे-लुके वैर-वैमनस्य की कसर निकाली। कथावाचक के यहां रोज बड़ी भीड़ जमती, रामायण की कथा सुनने के लिए नहीं, मोहनी और सुन्दर एवं वरदन और पिस्तौल के मजेदार किस्से सुनने के लिए।

जांच-पड़ताल और सुनवाई, तहकीकात में एक सप्ताह बीत चला। पुलिसवालों ने बाजी मार ली। असली हत्यारा पकड़ा गया। वह था, मद्रास से आया बदमाश गुण्डा जो अल-

कण्णल का चचेरा भाई था। असल में, यह सचाई अलकण्णल के सहयोग से ही प्रकाश में आयी।

उस बदमाश ने मद्रास से उस जवान लड़की शोभा को इधर गांव में बुला लिया, जो सुन्दर की चहेती रही। उसने उस लड़की को बार-बार उकसाकर सुंदर से रुपये उगाहने के लिए भेजा। एक-दो बार वह गयी भी। फिर सरलहृदया लड़की मुकर गयी। गुंडे की बात न मानी। बहुत अनुनय-विनय करके देखा। लड़की डिगी नहीं। आखिर तैश में आकर उसे गोली मार दी उसी गुंडे ने।

इत्तिफाक से वरदन जो स्वभावतया भीरु और बुद्धू है, पिताजी की पिस्तौल चुराकर, चिड़िया मारने तालाब की ओर चला। रात की वेला थी। जुगुनुओं के प्रकाश में उसने अंधाधुंध एक बार गोली चलायी। संयोग की बात है कि झाड़ी की आड़ में लड़की को लेजाकर उस धूर्त ने भी गोली चलायी। लड़की की चीख सुनते ही वरदन पिस्तौल वहीं फेंककर, बेतहाशा भाग चला। स्थिति का अन्दाज करके, सुन्दर वहां दौड़ा आया, देखा कि शोभा खून की धारा में भीगी पड़ी है, जान निकल चुकी है। पास ही वरदन की फेंकी पिस्तौल पड़ी थी। उसको दौड़ते हुए सुन्दर ने देख भी लिया। उसे बचाने एवं मोहनी को सुखी जीवन बिताने देने के लिए, सुन्दर ने स्वयं अपने को अपराधी स्वीकार किया। पर अलकण्णल ने उस बदमाश को रंगे हाथों पकड़वा दिया, उसके पास पिस्तौल थी और उसी में से निकली गोलियां ही शोभा की देह में घुसी थीं।

सुन्दर का त्याग अकारथ नहीं गया। स्वयं राजपार्ट ने आगे बढ़कर सुन्दर और मोहनी का शुभविवाह करा दिया। गांववालों को अच्छा डाक्टर ही नहीं, योग्य पथप्रदर्शक भी मिला।

स्नेहमयी रूपसी मोहनी को सब कुछ मिला? सारे गांव में उसी की तूती बोलने लगी। वह अक्सर सुन्दर से कहती आखिर डाक्टर साहब कच्चे तो नहीं हैं, बड़े 'अनुभवी' हैं! सुन्दर को यह व्यंग्य सोहता था। □

रूपांतरण :
र० शौरिराजन

दिमाग के मच्छर

एक दिन सबेरे-सबेरे एक सज्जन यशपालजी के निवास-स्थान पर नाश्ता कर रहे थे। साथ ही साथ राजनीतिक चर्चा भी हो रही थी। इस चर्चा के दौरान यशपालजी 'चेन-स्मोकिंग' कर रहे थे। यह देख वे सज्जन बेचैनी के साथ बोले, "यशपालजी, आप इतनी तेजी से सिगरेट क्यों पीते हैं?" यशपालजी मुस्कराते हुए बोले, "आपने गांवों में किसानों को गाय-भैंसों के ऊपर से मच्छर उड़ाने के लिए सूखी घास और गोबर के कंडे जलाकर धुआं करते तो अवश्य देखा होगा! बस, मैं भी इस समय अपने दिमाग के मच्छरों को उड़ा रहा हूं।"

सांस्कृतिक दूत

लल्लनप्रसाद व्यास का महत्त्वपूर्ण यात्रा-वृत्त

□□

श्री लल्लनप्रसाद व्यास पूर्व और पश्चिम के देशों की दर्जनों बार यात्रा कर चुके हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृति, प्रज्ञा और आत्मा की प्रतीक—हिन्दी का प्रचार-पौरोहित्य किया है। हिन्दी के सम्यक् प्रचार-प्रसार की प्रतिकूल स्थितियों में भी एक समर्पित और कर्मठ प्रचारक की हैसियत से उन्होंने इस विराट दायित्व को पूरा किया है। श्री व्यास एकसाथ ही योग्य पत्रकार, सुधी साहित्यकार, सफल संयोजक और पर्यटक हैं—इस प्रकार उन्होंने अपने व्यक्तित्व को कई आयाम दिये हैं। श्री व्यास ने पिछले 15-16 वर्षों से विदेशों में—विशेषकर पूर्व एशिया के देशों में भारतीय संस्कृति, मनीषा और हिन्दी भाषा की संस्तुति के साथ-साथ हिन्दी भाषा और साहित्य के तमाम सेवकों को अभिनव मंच दिया है। विश्व हिन्दी सम्मेलनों में अपनी भूमिका के द्वारा उन्होंने हिन्दी का गौरव बढ़ाया है। और इस प्रकार श्री व्यास ने अपनी इस महत्त्वपूर्ण कृति 'सांस्कृतिक दूत' की उपाधि को—अपने सौम्य व्यक्तित्व और कृती-संकल्प से स्थापित किया है।

प्रस्तुत पुस्तक में संगृहीत निबंध—चार विभिन्न प्रस्थानों, यथा 'सांस्कृतिक दृष्टि', 'सांस्कृतिक धरोहर', 'सांस्कृतिक यात्रा' और 'सांस्कृतिक चिंतन' में विभक्त होने के उपरांत भी अपने केंद्रीय उद्देश्य में समान हैं। अध्याय-चतुष्टय के चतुर्दिक एक प्रवहमान एवं प्रामाणिक यात्रा-वृत्त अपनी सांस्कृतिक गरिमा से सुशोभित है। संकलित निबंधों में लेखक के विचार, सामयिक टिप्पणियां एवं प्रतिक्रियाएं, चिंतन-मंथन, डायरी और भाषण के अंश भी हैं। सैंतालीस उपशीर्षकों में पाठ्य सामग्री बंटी है और इन निबंधों में परस्पर-सम्बद्धता भी है। लेखक ने भारतीय संस्कृति और उसकी मर्यादा के नाम पर शास्त्रीयता की दुहाई नहीं दी है, जैसा कि अधिकांश लेखकों ने किया है। और न ही भारतीय संस्कृति की महानता का कोई आरोपित दिग्दर्शन कराने का उद्देश्य है। उन्होंने अपने अनुभवों से अपने निष्कर्षों को सींचा है और बदलती परिस्थितियों में संशोधित भी किया है। लेखक ने यह स्वीकारा है कि भूमिका चाहे कितनी भी सदाशयपूर्ण हो और संकल्प चाहे जितना भी महान हो—तदनुरूप कार्य से सम्बद्ध अनुभव हमेशा मधुर नहीं होने। इसलिए पहला ही निबंध 'यात्रा-मंथन' से सम्बन्धित उन मिली-जुली उपलब्धियों की गाथा है—जिसमें अमृत और विष दोनों हैं। इस निबंध को आगामी निबंधों की प्रस्तावना या आधार-बिन्दु माना जा सकता है। लगभग चालीस पृष्ठों (पृ० 13-50) में राष्ट्र के सम्मुख अनेक चुनौती और संघर्षपूर्ण तथा असमंजस-भरे क्षणों के साथ-साथ लेखक ने अपने कटु-मधु यात्रानुभवों एवं व्यथापूर्ण गाथाओं का भी संकेत दिया है। विभिन्न देशों में प्रवासी भारतीयों की स्थिति और उनकी मनोदशाओं का बहुत ही निकट से अध्ययन कर उन्होंने जो निष्कर्ष दिए हैं—उन्हें इस क्रम में रखा जा सकता है :

(क) प्रवासी भारतीयों की औसत मानसिकता—पहला उद्देश्य है, पैसा कमाना और ऐश लूटना।

(ख) यह बद्धमूल धारणा कि भारतीय पिछड़े हैं। प्रवासी भारतीय इसी हीन भावना के शिकार हैं।

(ग) भारतीय दूतावासों की अकर्मण्यता एवं नौकरशाही वृत्ति। लेखक ने कई उदाहरणों द्वारा उनकी निरर्थकता पर प्रकाश डाला है। अन्यान्य निबंधों के अलावा 'भारतीय दूतावास—विदेशों में हमारे सफेद हाथी' शीर्षक निबंध में (पृ० 89, 93) विस्तार से इस विषय पर चर्चा की गयी है।

(घ) महान भारत का प्रतिनिधित्व केवल उसकी महान संस्कृति ही कर सकती है। लेखक के अनुसार—"विवेकानन्द, तिलक, अरविन्द सावरकर, गांधी और नेहरू—विदेशों में लोकप्रिय हो गये, वे अपने राजनैतिक कार्यों के लिए नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और आध्यात्मिक व्यक्तित्व के कारण।" (पृ० 30)

श्री व्यास के निष्कर्षों से हमेशा सहमत हो जाना बहुत सम्भव नहीं। अपने निबंधों में वे कहीं-कहीं अपने को दोहरा भी गये हैं और बहुत कुछ अनावश्यक भी लिख गये हैं। इसी तरह उन्होंने विवरण के केन्द्र में प्रायः स्वयं को ही रखा है। इसलिए अधिकांश निबंधोंको पढ़ते हुए पाठक एक प्रकार की तटस्थ उदासीनता का शिकार हो जाता है। थाईलैंड, सिंगापुर, कंबोडिया, हांगकांग, मोरिशस आदि की सांस्कृतिक गतिविधियों तक तो उनकी लेखनी मंद-मंथर रहती है लेकिन वहां के जन-जीवन, ऐतिहासिक स्थल या सम्बन्धित आकर्षण-केन्द्रों का विवरण कहीं तो अनावश्यक विस्तार लिये हुए है और कहीं समयाभाव के कारण लेखक स्वयं उसे देखने-जानने से वंचित रह गये हैं। इस द्रुत या विलंबित विवरण के लिए लेखक की सराहना इसलिए की जानी चाहिए कि उन्होंने अपने अनुभवों को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया है। ह्वेनसांग का मंदिर, सिंगापुर की शाम, एशियाई देशों में विष्णु का शंखनाद हो या जावा में दुर्गा—श्री व्यास चाहते तो इन द्रष्टव्य तथा महत्त्वपूर्ण यात्रास्थलों एवं सांस्कृतिक केन्द्रों का विवरण दूसरे संदर्भ-ग्रंथों से भी तैयार कर ले सकते थे। पर उन्होंने जीवंत यात्रानुभवों को—तत्काल शब्दों में बांध लिया है। इसलिए निबंधों का स्वर और स्वरूप अपनी रचनाधर्मिता में डायरीनुमा हो गया है। बहुत से अंश 'एकालाप' से प्रतीत होते हैं। ऐसे विवरण लंबे-लंबे वाक्यांशों या परिच्छेदों में ढल गये हैं। उनमें से सिर्फ एक का उदाहरण दिया जा सकता है—जो साहित्य-कार के संघर्ष से सम्बन्धित है और समयोचित भी, "अभी पिछले दिनों में, हम किसी भी सरकार के खिलाफ कुछ कहना नहीं चाह रहे हैं, हम केवल एक व्यवस्था की बात कर रहे हैं, एक ऐसी व्यवस्था में आकर इन्होंने जो भुगता—साहित्य के नाम पर, हिन्दी के नाम पर, संस्कृति के नाम पर, उसके लिए हम अपनी हमदर्दी कभी नहीं पेश कर सके इनके सामने, लेकिन आज बड़े गर्व के साथ कि उन सारे चंगुलों से छूटकर भी, गिरफ्त से छूटकर, उस धांधलेबाजी से छूटकर, उस अनन्यता से छूटकर भी—ये चमकते रहे अपनी प्रतिभा और अपनी श्रद्धा, अपनी अस्मिता और अपनी आस्था के बल पर, तो इसके लिए हम इनका स्वागत करते हैं और इनसे यही कहते हैं कि इस तरह की लड़ाई जब भी हो, जहां भी हो, किसी भी देश के कोने में हो, हम सभी लेखक इन लोगों के साथ हैं और हमेशा रहेंगे।" (पृ० 95)

लेखक ने अपनी स्वाभाविक उत्कटता को भाषा और भाव दोनों ही दिए हैं लेकिन वह भावुकता के शिकार कहीं नहीं हैं। जहां आवश्यक है वहां सहज विनम्रता भी है। वैदेशिक मामलों और नीतिगत प्रश्नों में भारत की निर्णायक भूमिका एक शक्तिशाली और महत्त्वपूर्ण राष्ट्र की भांति होनी चाहिए। सरकार की ढुलमुल नीतियों और उनकी खामियों का उल्लेख लेखक ने कई स्थानों पर किया है तथा चार मूलभूत निर्देशों के परिपालन का आग्रह (पृ० 92)

भी दिया है। संक्षेप में, इनकी रूपरेखा इस प्रकार है—

(1) विश्व में झूठी राजनैतिक प्रतिष्ठा जुगाये रखने की अनावश्यक भूमिका से हट-कर भारत सरकार अपनी नीतियों को अपने शुद्ध और सीधे राष्ट्रीय हितों पर आधारित रखे।

(2) हम जिन देशों के साथ—विशेषकर दक्षिण पूर्व एशिया के देशों से—बंधे हुए हैं—वहां मैत्री और भ्रातृत्व का क्षेत्र और विकसित किया जाय। अरब देशों के प्रति हमारा अत्युत्साह गलत और घातक हो सकता है। चीन और पाकिस्तान के साथ हमारे संघर्ष में उनकी तटस्थता की अनदेखी करना उचित नहीं।

(3) परिवर्तनशील विश्व के साथ अपनी नीतियों में परिवर्तन एवं संशोधन।

(4) चीन के साथ हमारी दोस्ती पराजित मनोवृत्ति के साथ नहीं, अपितु एक सुदृढ़ शक्तिशाली राष्ट्र की हैसियत से कायम हो।

श्री व्यासजी ने पत्रकार एवं साहित्यकार के योग्य दायित्व-निर्वाह के साथ-साथ सम-सामयिक स्थितियों में राजनैतिक विवेक को सर्वोपरि रखा है। साथ ही, किसी प्रकार के बाहरी हस्तक्षेप का विरोध भी किया है। लेकिन भौगोलिक परिस्थितियों में तथा सामान्य स्थितियों में—हमारी सैन्य व्यवस्था तथा आणविक शक्ति सम्बन्धी नीति क्या होनी चाहिए—इस पर प्रकाश नहीं डाला। 'शुद्ध और सीधे राष्ट्रीय हितों' को भी परिभाषित किये जाने की अपेक्षा थी। श्री व्यास ने अपने एक प्रवासी मित्र श्री जुगलकिशोर गुप्ता द्वारा दी गयी सूचनाओं के आधार पर कम्बोडिया के ऐतिहासिक पतन की गाथा का प्रामाणिक विवरण दिया है। प्रति-पल संकटपूर्ण प्रवासी भारतीयों की उस असह्य पीड़ा, असहायावस्था और दुरवस्था का मार्मिक चित्रण करते हुए उस समय भी, जैसा पहले कहा जा चुका है—भारतीय दूतावास की अकर्म-ण्यता को रेखांकित किया गया है—तब, जबकि लाचार और असहाय भारतीयों को सम्बद्ध दूतावासों से सहयोग और निर्देश की सबसे अधिक आवश्यकता होती है।

नेताजी से सम्बन्धित तीन लेख (पृ० 121-132) हैं और इसी क्रम में उनके प्रवासी शुभैषी और सहायक पं० रघुनाथ शर्मा का विशेष उल्लेख है। ग्रंथ के परिशिष्ट में पं० शर्मा द्वारा लिखे गये आलेख से कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर, स्वामी सत्यानन्द महाराज तथा सत्यानन्दपुरी (श्री प्रफुल्ल कुमार सेन) और स्वयं शर्माजी के प्रयासों का सविस्तार ब्योरा मिल जाता है—जिनकी बुनियाद पर 'थाई भारत कल्चरल लॉज' तथा 'प्राच्य सांस्कृतिक परिषद्' की स्थापना हो सकी। श्री व्यास भी इस सांस्कृतिक एवं साहित्यिक मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को आगे बढ़ानेवाली एक गैरसरकारी कड़ी के रूप में अपनी सेवा देते रहे हैं।

समीक्ष्य पुस्तक के अंतिम दो अध्याय: 'सांस्कृतिक धरोहर' और 'सांस्कृतिक यात्राएं'—हिन्दी साहित्य के लिए अमूल्य यात्रा-वृत्त हैं—जिनके अंतर्गत दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में भारतीय संस्कृति के अवशेषों का अध्ययन किया गया है। धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी यहां बृहत्तर आर्य संस्कृति और बौद्ध संस्कृति का न केवल परंपरागत बल्कि जीवित अंश अब भी सुरक्षित है। लेखक ने इन देशों के दर्शनीय, सांस्कृतिक और महत्त्वपूर्ण स्थलों का मात्र परिदर्शन या औपचारिक विवेचन ही नहीं किया है, बल्कि बदली हुई परिस्थितियों और सम्बन्धित संदर्भों में—उन देशों के लोगों की मानसिकता का अंतरंग एवं प्रामाणिक विश्लेषण भी किया है। ऐसा करते हुए उन्होंने विषय को कहीं भी जटिल नहीं किया है और न अनावश्यक बातों या टकसाली भाषा से बोझिल किया है। विवरणों में सरलता और विश्वसनीयता है। लेखक ने अपने पत्रकार स्वरूप को और पत्रकारिता की मर्यादा को अपना लक्ष्य बना रखा है और विषय-निरूपण-क्रम में जहां जरूरत पड़ी है—वहां विषयांतर करते हुए भी उन्होंने प्रस्तुत

को कहीं अनदेखा नहीं किया है।

'सांस्कृतिक दूत'—सांस्कृतिक यात्रा-वृत्त के संदर्भ में एक प्रामाणिक कृति एवं अद्यतन प्रस्तुति है। राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संदर्भों में समसामयिक प्रश्नों के उत्तर और समाधान ढूंढ-निकालने का उपक्रम भी किया गया है। राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के परिप्रेक्ष्य में लेखक वर्त्तमान को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं। यह पुस्तक समय-समय पर लिखे गये निबंधों का संकलन है लेकिन इनका संयोजन-प्रकाशन 78-79 ई० में हुआ है। भारतीय स्वतंत्रता-प्राप्ति के पच्चीस वर्षों में राष्ट्र में हुई प्रगति का लेखा-जोखा करते हुए विभिन्न अनुभवों के संदर्भ में लेखक का निष्कर्ष है कि "अतिवादों (एक्सट्रीम्स), विभिन्नताओं, विविधताओं और मतभेदों के देश की प्रगति का रास्ता न वामपंथ है न दक्षिणपंथ और न पूंजीवाद है न साम्यवाद। यह रास्ता है मध्य का। सभी के समन्वय के साथ चलना है। हमें गरीबी हटाते हुए राष्ट्र के निर्माण में उनका सहयोग तो लेना है, पर समृद्धिवानों की समृद्धि से भी राष्ट्र को लाभ पहुंचाना है।" (पृ० 292) यह महात्मा गांधी की 'ट्रस्टीशिप' की प्रकारांतर व्याख्या है।

लेखक के उपर्युक्त वक्तव्य को या उनकी दृष्टि को कतिपय सम्बद्ध या प्रतिबद्ध लोग यथास्थितिवादी या 'ना काहू से दोस्ती···ना काहू से बैर···' वाली वैष्णवी दृष्टि का ही उदाहरण बतायेंगे। पर यह एक ऐसी टिप्पणी है—जो सम्प्रति देशहित के लिए सबसे अधिक उपयुक्त, विधायक और रचनात्मक है। "इस महान कार्य में वर्गसंघर्ष और वर्गद्वेष से देश को बचाना है जो राजनैतिक स्वार्थों के कारण प्रश्रय पा जाता है। यहां उल्लेखनीय है कि नेहरूजी के समय में भारत के आर्थिक विकास के मध्य मार्ग का रूस के अनेक बुद्धिजीवियों ने स्वागत किया—भले ही वे राजनैतिक कारणों से मुखर न हो पाये।" (पृ० 292)

प्रस्तुत पुस्तक पाठकों को—अपनी पठनीयता के कारण बांधे रखती है। लेखक ने विवरणों में तनिक विस्तार किया होता और कुछ संदर्भों या चित्रों से पुष्ट किया होता तो वह और भी रोचक होता। कई स्थलों और महत्त्वपूर्ण स्थानों के नाम और वर्त्तनी में एकरूपता नहीं है।

पुस्तक अपनी प्रस्तुति में भव्य है और छपाई-सफाई में निर्दोष। प्रूफ की अशुद्धियां नगण्य हैं। अध्यायों को विभाजित करने के लिए चित्रसह पृष्ठों का अभियोजन किया गया है। पुस्तक के आरंभ और अंत में सांस्कृतिक कार्यक्रमों—विशेषकर विश्व हिन्दी सम्मेलन की झांकियों का 'मोंटाज' भी कुशलतापूर्वक संयोजित है। अच्छा होता, ये सभी चित्र अपने स्वाभाविक रूप में—पुस्तक के अंत में—अलबम की तरह लगा दिये जाते। तब शायद कृति का मूल्य और अधिक हो जाता और महत्त्वपूर्ण भी। आशा है, लेखक ऐसी जीवंत, प्रामाणिक एवं सार्थक यात्रा-वृत्तों से हिन्दी का भंडार समृद्ध करेंगे। इस प्रकार की सामग्री का बहुत ही अभाव है। लेखक और प्रकाशक दोनों ही इस कृत्ति के प्रणयन और प्रकाशन के लिए बधाई के पात्र हैं।

डॉ० रणजीतकुमार साहा

विश्व हिन्दी की यात्रा

दोनों विश्व हिन्दी सम्मेलनों पर प्रथम पुस्तक

आलोच्य पुस्तक में दोनों विश्व हिन्दी सम्मेलनों का विवरण है। प्रथम सम्मेलन नागपुर में जनवरी 10-13, 1975 को तथा द्वितीय सम्मेलन अगस्त 28-30, 1976 को मोरिशस में सम्पन्न हुआ। श्री व्यास दोनों विश्व हिन्दी सम्मेलनों के सहायक मंत्री रहे हैं।

प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन में कई महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित हुए और राष्ट्रभाषा हिन्दी को विश्व के मंच पर प्रतिष्ठित करने का राष्ट्रीय संकल्प दुहराया गया। भाषा ही राष्ट्र की पहचान होती है। राष्ट्रभाषा के माध्यम से हम अपने राष्ट्र को गौरवान्वित करते हैं। सम्पूर्ण विश्व में अपनी सत्तास्मिता को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। इसीलिए आचार्य विनोबा भावे ने अपने संदेश में कहा—" विश्व बहुत नज़दीक आ गया है—हम तो विश्वव्यापक हैं। हमारा कुटुम्ब दूर तक फैला है। चन्द्र, मंगल सब हमारे कुटुम्ब में आते हैं···। मैं विश्वमानव हूं।" वस्तुतः भाषा ही व्यक्ति को प्रतिष्ठित करती है—इसलिए जब किसी राष्ट्र को विश्व-मंच पर प्रतिष्ठित करना हो तो उसकी भाषा को अभिषिक्त करना होगा। यही आचार्य भावे एक ओर 'जय ग्रामदान' बोलते हैं तो दूसरी ओर 'जय जगत्' भी। विज्ञान और आत्मज्ञान का संबंध घनिष्ठ होना चाहिए।

उद्घाटन समारोह में श्रीमती इन्दिरा गांधी, डॉ० शिवसागर रामगुलाम (मोरिशस के प्रधानमंत्री),(स्व०) श्री अली यावरजंग (महाराष्ट्र के तत्कालीन राज्यपाल),(स्व०) अनन्त गोपाल शेवड़े (सम्मेलन के महासचिव), श्री बी० पी० नायक (महाराष्ट्र के तत्कालीन मुख्य-मंत्री), डॉ० कर्णसिंह, डॉ० लोठार लुत्से आदि की उपस्थिति से इस सम्मेलन की सफलता का संकेत मिल जाता है। इनकी उपस्थिति मात्र औपचारिक नहीं थी—सबके भाषण में हिन्दी के उसके अपेक्षित स्थान और सम्मान के लिए पर्याप्त आग्रह था। यूनेस्को के प्रतिनिधि ने भी संतोष व्यक्त किया कि "विविधता में एकता तथा मानवीय मूल्यों की ग्राह्यता हिन्दी के ऐतिहासिक विकास में विद्यमान रही है, जो भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के केन्द्र-बिन्दु हैं—इन विचारों को हिन्दी द्वारा ही पोषण प्राप्त हुआ है।"

इस सम्मेलन में सात विचारगोष्ठियों का संयोजन किया गया था—यथा,

1. हिन्दी की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति
2. विश्वमानव की चेतना—भारत और हिन्दी : शाश्वत मूल्यों की खोज
3. विश्वमानव की चेतना—जनसंचार साधनों की भूमिका
4. विश्वमानव का मूल्यगत संकट तथा भाषा और लेखन के संदर्भ में युवा पीढ़ी की मानसिकता
5. आधुनिक युग और हिन्दी : आवश्यकताएं और उपलब्धियां (प्रशासन, विधि और विधायी कार्यों की भाषा)
6. "···" (ज्ञान-विज्ञान का माध्यम)
7. " (भाषाशिक्षण और सहायक सामग्री)

हिन्दी की विश्वजनीन भूमिका और हिन्दी सेवकों की सेवा-साधना को वृहत्तर परिवेश में दूसरा मंच मिला, मोरिशस में अनुष्ठित द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन में। मोरिशस में इस आयोजन के लिए कितना उत्साह था—यह श्री सुरेश रामवर्ण के आलेख से प्रकट हो जाता है। मोरिशस में भी चार विचारगोष्ठियां सम्पन्न हुईं—(1) हिन्दी का अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप और स्थिति, (2) जनसंचार के माध्यम और हिन्दी, (3) हिन्दी और स्वैच्छिक संस्थाओं की भूमिका, और (4) विभिन्न देशों में हिन्दी पठन-पाठन की समस्याएं। इन गोष्ठियों में विभिन्न वक्ताओं ने हिन्दी वालों को उन चुनौतियों के लिए भी तैयार होने को कहा जो अंतरंग और बहिरंग प्रतिक्रियाओं के कारण उत्पन्न हो रही हैं और उत्पन्न हो सकती हैं। हिन्दी टकराव के बदले सद्भाव से फैलेगी। विश्वप्रेम और मानवता उसकी प्रतिज्ञा है, उसका उद्देश्य।

मोरिशस ने इस ऐतिहासिक अवसर पर तीन स्मरणीय डाक टिकटों पर प्रथम बार

हिन्दी का प्रयोग किया। डॉ० कर्णसिंह की अध्यक्षता में 'विश्व हिन्दी प्रतिष्ठान' नामक एक ऐसे स्थायी संस्थान की भी स्थापना की गई जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के अनेकानेक रचनात्मक कार्यक्रम आयोजित करेगी। तदनुसार जनवरी, 1979 में 'विश्व हिन्दी दर्शन' पत्रिका का शुभारंभ हुआ।

इसके पूर्व 4 अक्तूबर, 1978 को भारत के तत्कालीन विदेश मंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने राष्ट्रसंघ की महासभा में अपना भाषण पहली बार हिन्दी में प्रस्तुत कर दोनों विश्व हिन्दी सम्मेलनों की राष्ट्रसंघ-संबंधी प्रस्तावना को साकार किया। श्री वाजपेयी ने इसका औचित्य सिद्ध करने के लिए विश्व हिन्दी सम्मेलनों की ही चर्चा की थी। इस प्रकार, राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हिन्दी की धारा अपना सर्वव्यापक स्वरूप ग्रहण कर महासागरों की विश्व-धारा में आ मिली। हिन्दी भारत की भौगोलिक सीमाओं को लांघकर विदेशों में पहुंच चुकी है। विश्वमंच पर अपनी सार्थकता को सिद्ध करना उसे ही नहीं, सारे भारत को गौरवान्वित करेगा।

यह पुस्तक दोनों विश्व हिन्दी सम्मेलन के समस्त आयोजनों एवं उपलब्धियों का प्रामाणिक दस्तावेज है। लेखक ने कहीं भी अतिरंजना से या कल्पना से काम नहीं लिया है। श्री व्यास हिन्दी के व्यापक प्रसार-प्रचार के कार्यक्रम के अंतर्गत वर्षों से सक्रिय हैं—पर इस कृति के द्वारा उन्होंने हिन्दी के सम्यक् समर्थन के लिए अहिन्दी-भाषियों और विश्व में प्रवासी हिन्दी-भाषियों का ध्यान भी आकर्षित किया है। हिन्दी के माध्यम से उन सबकी भावनाओं को भी बल मिला है। लेखक इस कृति के लिए बधाई का पात्र है।

—केदारनाथ कोमल

दोनों पुस्तकों के लेखक : श्री लल्लनप्रसाद व्यास,
प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, 61-एफ, कमला नगर, दिल्ली-110007,
मूल्य : 50 रुपये तथा 35 रुपये

तब की पत्रकारिता

जब बम्बई से 'राष्ट्रमठ' निकाला जाने वाला था, तब उसके संचालक आफिस के लिए मेज-कुर्सी आदि की व्यवस्था कर रहे थे। उस समय तिलक ने कहा, "जब हमने 'केसरी' और 'मराठा' निकाले थे, तब हमारे पास ऐसा फर्नीचर न था। हमें उन पत्रों से एक पाई भी नहीं मिलती थी। पर बिस्तरों के पुलिन्दों की मेज पर लिखे गये हमारे लेख काफी प्रभावशाली और ओजपूर्ण होते थे।"

With Best Compliments

from

❁

M.R. AMARNATH

SAMPENG, BANGKOK
(THAILAND)

ईश्वर सर्वव्यापी है, सर्वशक्तिमान एवं सर्वगुण-सम्पन्न है। वह निराकार है। वह अभेद और अखण्ड है। वह सत्य है तथा निष्पाप है। वह सर्वत्र विद्यमान है तथा अन्तर्यामी है। वह स्वयंभू एवं शाश्वत तथा जीवन-मरण से दूर है। उस दयानिधान ने अपनी कृति मानव-जाति के हितार्थ उसे समस्त पदार्थों का सच्चा बोध कराया है।

—यजुर्वेद

हरिजनों तथा अन्य कमजोर वर्गों के आर्थिक स्तर को उठाने की दिशा में दिल्ली प्रशासन की उपलब्धियां

- हरिजनों तथा कमजोर वर्गों की भलाई से सम्बन्धित योजनाओं पर तेजी से अमल ।
- हरिजन कल्याण पर पिछले वर्ष प्रशासन द्वारा 76 लाख रुपये व्यय और इस वर्ष 105 लाख रुपये की योजनाओं पर अमल ।
- ३७ हरिजन परिवारों को बसें खरीदने के लिए आर्थिक सहायता ।
- एक हजार से अधिक हरिजन विद्यार्थियों को सवा चार लाख रुपये की वार्षिक छात्रवृत्तियां ।
- 200 रुपये से कम आय वाले हरिजन अभिभावकों के बालकों को 45 रुपये प्रति बालक छात्रवृत्ति ।
- पिछड़े वर्गों एवं कमजोर वर्गों के 5772 छात्रों को 16 लाख 29 हजार रुपये की छात्रवृत्तियां ।
- हरिजन छात्र और छात्राओं के लिए अलग-अलग छात्रावास ।
- 500 रुपये से कम मासिक आय वाले अभिभावकों के विद्यार्थियों के लिए छात्रावासों में मुफ्त रहने की व्यवस्था ।
- प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने वाले हरिजनों और पिछड़े वर्गों के युवक-युवतियों को मुफ्त प्रशिक्षण देने की सुविधा ।
- 1780 हरिजन कारीगरों को अपने धंधे चलाने के लिए प्रत्येक कारीगर को 500 रुपये के मुफ्त औजार आदि ।
- 3200 सफाई कर्मचारियों को 8 लाख रुपये की लागत के ठेले ।
- हरिजन बस्तियों के सुधार पर 20 लाख रुपये खर्च ।
- दिल्ली में प्रायः सभी 14 हजार हरिजन परिवारों को मकान बनाने के लिए जमीन ।
- हरिजनों और पिछड़े वर्गों के लोगों को मकान बनाने के लिए 1500 रुपये प्रति परिवार की सहायता ।
- हरिजन कल्याण के कार्यों में लगी गैर-सरकारी संस्थाओं को 50 प्र० श० से 80 प्र० श० तक का अनुदान ।

हरिजनों व पिछड़े वर्गों तथा निर्धनों की
हालत सुधारने में
अग्रणी : दिल्ली प्रशासन

सूचना एवं प्रचार निदेशालय, दिल्ली प्रशासन, दिल्ली द्वारा प्रसारित

राष्ट्रीय वस्त्र निगम (उत्तर प्रदेश) लिमिटेड

(भारत सरकार का संस्थान)

'सिलवर्टन' १४/८२ सिविल लाइन्स,
कानपुर-२०८००१

अपनी मिलों में उत्पादन तथा कार्यक्षमता बढ़ाने
तथा देश के आर्थिक उत्पादन हेतु संकल्पबद्ध

इकाइयाँ :

१. म्योर मिल्स, कानपुर
२. न्यू विक्टोरिया मिल्स, कानपुर
३. लार्ड कृष्णा टेक्सटाइल मिल्स, सहारनपुर
४. बिजली काटन मिल्स, हाथरस
५. श्री विक्रम काटन मिल्स, लखनऊ

अतिरिक्त अभिरक्षक के प्रबन्ध में :

१. लक्ष्मी रतन काटन मिल्स, कानपुर
२. अर्थटन मिल्स, कानपुर

सूत उत्पादन :

उपरोक्त मिलों द्वारा १-१/२ नम्बर से ६० नम्बर तक का उत्तम कोटि का सूत उत्पादित किया जाता है। इसके अतिरिक्त ये मिलें फोल्डेड यार्न भी बनाती हैं।

वस्त्र उत्पादन :

बिजली काटन मिल्स, हाथरस व श्री विक्रम काटन मिल्स, लखनऊ के अतिरिक्त उपरोक्त समस्त मिलें प्रतियोगातमक मूल्यों पर निर्यात को एवं जन साधारण के रुचिकारक उत्तम कोटि के वस्त्रों के उत्पादक।

प्रस्तुत करते हैं

लंकलाट, मारकीन, चादरें, जीन, तौलिये, टावलिंग क्लाथ, पापलीन, धोती, साड़ी, मलमल, छींट, दोसूती, तिरपाल, तम्बू, स्क्रीन प्रिंट इत्यादि।

करों का तुरन्त भुतान करें और

- ❀ ब्याज और जुर्माने से बचें
- ❀ अपना मानसिक तनाव और चिन्ता को दूर करें
- ❀ अच्छा नागरिक बनें
- ❀ राष्ट्र-निर्माण के लिए साधन जुटाने में मदद करें
- ❀ कर के भुगतान के लिए आखिरी तारीख निश्चित होती है किन्तु आखिरी दिन का इन्तजार क्यों करें ? विलम्ब के कारण अक्सर चुक हो जाती है ।

सही कर जमा करें : राष्ट्र की शक्ति बढ़ाये
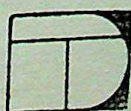
निरीक्षण निदेशक
(गवेषणा, सांख्यिकी और प्रकाशन)
आय कर विभाग
नई दिल्ली-110001
द्वारा जारी किया गया

डीएवीपी 79/394

कीरति भनिति भूति भलि सोई
सुरसरि सम सब कहँ हित होई

—रामचरित मानस

हरितारा चैरिटेबिल ट्रस्ट
जम्मू

साहित्य अकादेमी द्वारा हिन्दी में प्रकाशित टैगोर-साहित्य

(क) उपन्यास

1. गोरा

   रवीन्द्रनाथ ठाकुर के इस सर्वश्रेष्ठ उपन्यास का स० ही० वात्स्यायन 'अज्ञेय' द्वारा हिन्दी अनुवाद। मूल्य : 12.00

2. योगायोग

   कथाकार रवीन्द्रनाथ के इस नाम से प्रख्यात उपन्यास का इलाचन्द्र जोशी द्वारा हिन्दी अनुवाद। मूल्य : 10.00

3. आंख की किरकिरी

   रवीन्द्रनाथ ठाकुर के 'चोखेर बालि' नामक उपन्यास का हंसकुमार तिवारी द्वारा हिन्दी अनुवाद। मूल्य : 9.00

(ख) कहानियां

टैगोर की चुनी हुई 21 कहानियों का रामसिंह तोमर द्वारा कृत हिन्दी अनुवाद। इसमें सोमनाथ मैत्र ने अपनी भूमिका में रवीन्द्रनाथ के कथा-शिल्प पर विस्तार से प्रकाश डाला है। मूल्य : 12.00

(ग) नाटक (दो खण्ड)

रवीन्द्रनाथ के चुने हुए नाटकों में से 'विसर्जन', 'चित्रांगदा', 'चिर कुमार सभा', 'राजा', 'डाकघर', 'मुक्त धारा' और 'रक्त करबी' नाटकों का अधिकारी विद्वानों द्वारा कृत अनुवाद। (प्रत्येक खण्ड) मूल्य : 8.00

(घ) निबन्ध (दो खण्ड)

रवीन्द्रनाथ के चुने हुए ऐतिहासिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षणिक, सामाजिक, राजनैतिक, ग्राम सुधार, आत्मकथात्मक और साहित्य-समीक्षा-संबंधी निबन्धों का अधिकारी विद्वानों द्वारा कृत अनुवाद। (प्रत्येक खण्ड) मूल्य : 20.00

(ङ) कविताएं

कविवर रवीन्द्रनाथ की 101 चुनी हुई कविताओं का सुन्दर संकलन। हिन्दी अनुवादक हैं हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामधारी सिंह 'दिनकर', हंसकुमार तिवारी और भवानी प्रसाद मिश्र। मूल्य : 12.00

(च) बाल-साहित्य

लीला मजूमदार तथा क्षितीश राय द्वारा सम्पादित बालोपयोगी रचनाओं का हिन्दी अनुवाद किया है युगजीत नवलपुरी ने। मूल्य : 7.50

कृपया पुस्तकों की प्राप्ति एवं अन्य जानकारी हेतु हमें निम्नलिखित पते पर लिखें।

साहित्य अकादेमी
रवीन्द्र भवन
35, फिरोज़शाह रोड, नई दिल्ली-110001

दृढ़ निर्धार एवं हौसले के साथ हम चल पड़े हैं हमारी मंझिल की ओर...

सब की जिंदगी में सुख की सुबह हो....

प्रत्येक के लिए न्याय, समानता और सुरक्षा की आश्वस्ति हो... हर कोई एक अधिकार के रूप में अपना जीवन सम्मान के साथ बिता सके...

ये हैं महाराष्ट्र शासन की सामान्य नीति के मूलभूत सिध्दान्त इसके फलस्वरूप, राज्य की सर्वंकष प्रगति के उद्देश्य से चल जानेवाले समूचे सामाजिक आर्थिक कार्यक्रम का केंद्रबिंदु हमेशा समाज का कमजोर तबका रहा है।

इस नीति के अनुरूप महाराष्ट्र में प्रगतिशील नीतियों व भूमि-वितरण, गृहहीनों के लिए गृहनिर्माण, गंदी बस्तियों में रहनेवालों के लिए बुनियादी सुविधाओं की पूर्ति, आर्थिक दृ[illegible] पिछड़े वर्ग को रियायतें, आदिवासी कल्याण के लिए वि[illegible] जनजाति-उपयोजना, कृषि के हेतु सस्ती बिजली, कृषि उत्पादन के लिये उचित मूल्य की गारंटी, कृषि मजदूरों के लिए न्यूनतम वेतन, ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना, शिक्षि[illegible] बेकारों के लिए रोजगार निर्माण, स्वयंव्यवसाय का प्रसार, लगातार चार सालों तक बेरोजगार रहनेवाले शिक्षित बेकारों [illegible] भत्ता, आदि जैसे क्रान्तिकारी कार्यक्रमों का सिलसिला शुरू हुआ है।

महाराष्ट्र शासन अपनी सभी प्रगतिशील नीतियों तथा क्रांतिकारी कार्यक्रमों के संबंध में प्रतिबध्द है। तथापि उनके सफल क्रियान्वय के लिए जनसहभाग अत्यंत आवश्यक है।

सूचना व जनसंपर्क महासंचालनालय, महाराष्ट्र शासन

This Season delight your woman
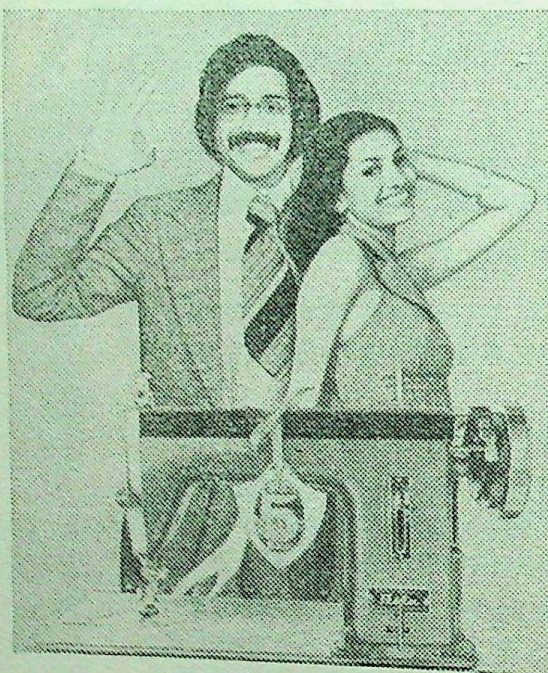
Buy her a RITA Sewing Machine because it's built with tender loving care by men, who know and understand sewing mechanism and with women in mind.

Rita's trouble free performance and superb quality at no extra cost has been delighting women all over the world.

And what a fitting gift Rita would be for your wife, or your daughter-or for someon you love !

Rita

RITA MECHANICAL WORKS,
LUDHIANA

LOVE IS GIVING HER

बच्चे तभी जब आप चाहें

अनचाहे गर्भ से सोच विचार कर बनाई गई आपकी सारी योजनाएँ व्यर्थ हो सकती हैं। कई लोगों के साथ ऐसा हुआ है— आप इस गलती को न दोहराएँ।

याद रखिए, उपचार से परहेज बेहतर है।

बच्चों का जन्म संयोग पर न छोड़िए।

निरोध इस्तेमाल कीजिए

यह पुरुषों के लिए आसान और सरल तरीका है। यह आपको पास के किसी कैमिस्ट या परिवार कल्याण केन्द्र से मिल सकता है।

NIRODH
SUBSIDISED PRICE
25 PAISE FOR 3
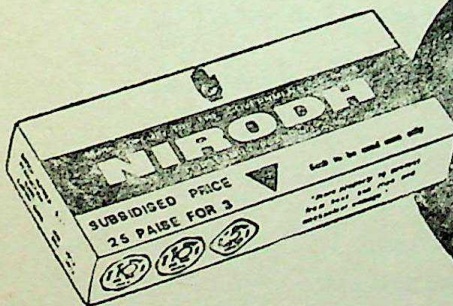
निरोध
सुखी जीवन
का उपाय

सुखी जीवन के लिए पति पत्नी के वास्ते एक भरोसेमंद साधन

davp 79/107

फार्म 4

प्रकाशन स्थान	नयी दिल्ली
प्रकाशन अवधि	त्रैमासिक
मुद्रक का नाम	रूपक प्रिंटर्स
क्या भारत का नागरिक है ?	हां
पता	के-17 नवीन शाहदरा, दिल्ली
प्रकाशक का नाम	लल्लनप्रसाद व्यास
क्या भारत का नागरिक है ?	हां
पता	C-13 प्रेस इन्क्लेव, साकेत, नयी दिल्ली
संपादक का नाम	लल्लनप्रसाद व्यास
उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	लल्लनप्रसाद व्यास C-13 प्रेस इन्क्लेव, साकेत, नयी दिल्ली

मैं, लल्लनप्रसाद व्यास एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

लल्लनप्रसाद व्यास

रजि० नं० 3449/79 January-March, 1980

रूपक प्रिंटर्स, दिल्ली-32 में मुद्रित फ़ोन : 204331